चन्दामामा
जून १९६१
50
NP

चन्दामामा

जून १९६१

बसंती
LUX
हरा
LUX
नीला
LUX
गुलाबी
LUX
‘मेरा मनपसंद
लक्स
इंद्रधनुष के
चार रंगों में
और सफ़ेद भी!’
वहीदा रहमान
कहती हैं
LTS. 81-X29 HI
हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

"बेशक यह है बिन्नी का..."
QUALITY FABRICS
BINNY & CO. (MADRAS) LTD.

जून १९६१

चन्दामामा से हम बच्चों का मनोरंजन और लाभ दोनों ही होता है। इस प्रकार "एक पंथ दो काज" कहावत वाली पत्रिका की हम हार्दिक उन्नति चाहते हैं।

सरदार नरेन्द्रसिंह, मकतपुर

चन्दामामा बहुत ही लोकप्रिय है। खास तौर पर हम बच्चों के लिए यह एक अमूल्य रत्न है, उसमें हमें जिवन के आदर्श पथ के लिए बहुत-से बड़े बड़े उपदेश मिलते हैं। परन्तु एक बात है उसे दोष कहिए या गुण कहिए, जब तक पत्रिका समाप्त नहीं होती तब तक उठने का मन नहीं करता है। यह पत्रिका मासिक है, पर एक सप्ताह में ही समाप्त हो जाती है और फिर बाकी तीन सप्ताह मुँह फैलाए बैठ रहते हैं।

सुशोभन चक्रवर्ती, समाद गढ़

"चन्दामामा" वास्तव में "बाल साहित्य" के विकास में सबसे अधिक सहायक सिद्ध हुआ है। और हो रहा है।

घनश्यामसिंह 'यादव' ग्वालियर

मैं चन्दामामा में ऐसी कहानी, तस्वीर और धारावाहिक उपन्यास को देखकर मेरा मन खुशी से भर उठता है।

बनवारीलाल अग्रवाल, अनगुर

मेरे विचार से तो "चन्दामामा" एक सर्व श्रेष्ठ पत्रिका है। इसे पढ़ने से पता चलता है कि यह पत्रिका नन्हें नन्हें किशोरों के लिए ही नही बल्कि युवकों के लिए भी एक प्रकार से मनोरंजन का साधन है।

ओमप्रकाश 'पाशी' अम्बाला

मुझे तो इतना ही कहना काफ़ी है कि जो पाठक इस मासिक पत्रिका को पढ़ते रहेंगे, उनका जीवन सुधर कर, समाज में आदर्श बन जायेगा। यह पत्रिका बच्चों के कोमल हृदय से लेकर युवकों, वृद्धों के दृढ़ हृदय में भी सदाचार, प्रसन्नता ही नहीं बल्कि वीरता की भावनाएं भी उत्तेजित करती है।

जलाल अहमतखाँ, जैसुखपुर

चन्दामामा की हिन्दी प्रती हर मास पढ़ते हैं। इसमें रसीली कहानियों के अलावा धारावाहिक उपन्यास और फोटो प्रतीयोगिता में हमें पूर्ण रुची है। जब तक हमारे हाथ चन्दामामा नहीं आता हम बेचैन रहते हैं और उसकी प्रतीक्षा करते हैं। हम चाहते हैं इसमें चुटकले और बच्चों के पत्र-मित्र स्तम्भ की स्थापना हो, ताकि हम बच्चे अपने मित्रों से पत्र व्यवहार करके चन्दामामा के बारे में लिखे और हम चाहते हैं कि चन्दामामा विश्वकी सबसे अच्छी पत्रिकाओं में हो।

बाबूलाल किशनलाल, रायगढ़

चन्दामामा में प्रकाशित रचनायें ज्ञानवर्धक एवं पवित्र विचार युक्त रहती हैं। मैं इसका एक नियमित पाठक एवं प्रशंसक हूं। ऐसे अभूतपूर्व प्रकाशन के हेतु मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार कीजिये।

रतनेशकुमार जैन, रांची

अपनी चिन्ताओं को
दूर करो
KAMAL
जबर्दस्त ठंड और गरमी के बीच में क्या चीज़ है। वह कहाँ है? हम आराम से कैसे रह सकते हैं? इसके लिए अफगान लवेन्डर छिड़किये। यह सुगन्धित है। थकान दूर करता है और त्वचा को चमकाता है। कमल साबुन, अफगान टाल्कम, अफगान स्नो, ये सब वधुओं के लिए अत्यावश्यक है।
अफगान स्नो
सौन्दर्य पोषक साधन

कोलगेट से दिनभर दुर्गंधमय श्वास से मुक्त रहिए और दन्त-क्षय को रोकिए !

अधिक साफ़ निर्मल श्वास व सफ़ेद दांत के लिए ... सारी दुनिया में अधिकाधिक लोग किसी दूसरी डेन्टल क्रीम की अपेक्षा कोलगेट ही खरीदते हैं
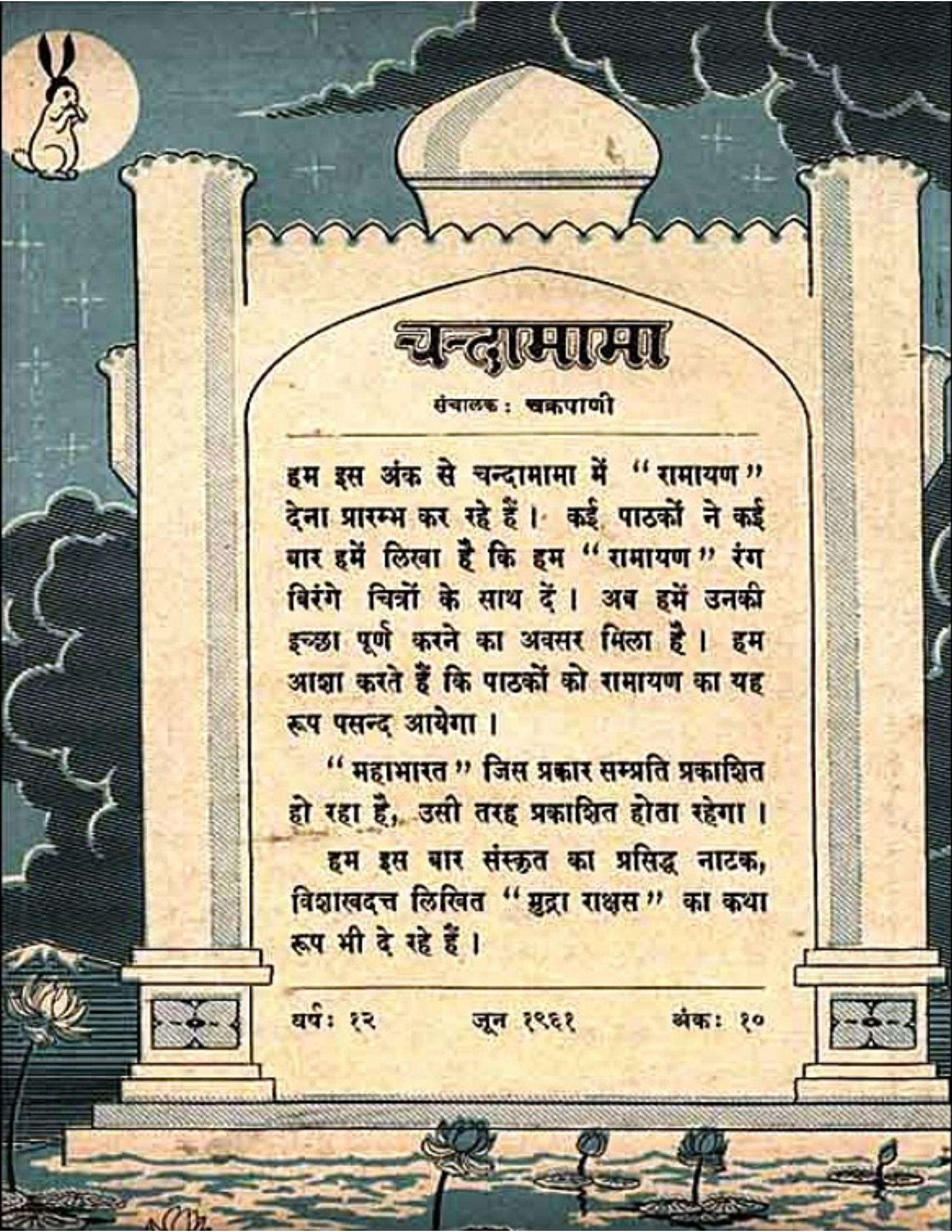
चन्दामामा

संचालक : चक्रपाणी

हम इस अंक से चन्दामामा में "रामायण" देना प्रारम्भ कर रहे हैं। कई पाठकों ने कई बार हमें लिखा है कि हम "रामायण" रंग बिरंगे चित्रों के साथ दें। अब हमें उनकी इच्छा पूर्ण करने का अवसर मिला है। हम आशा करते हैं कि पाठकों को रामायण का यह रूप पसन्द आयेगा।

"महाभारत" जिस प्रकार सम्प्रति प्रकाशित हो रहा है, उसी तरह प्रकाशित होता रहेगा।

हम इस बार संस्कृत का प्रसिद्ध नाटक, विशाखदत्त लिखित "मुद्रा राक्षस" का कथा रूप भी दे रहे हैं।

वर्ष: १२ जून १९६१ अंक: १०

बड़ की गवाही

एक गाँव में सेठ नारायण दास नाम का एक धनी रहा करता था। वह एक दूर गाँव की ओर जा रहा था कि रास्ते में मटरु नाम का एक ग्रामवासी दिखाई दिया। उसने कहा—"सेठ जी, घर ढह गया है। यदि जल्दी ठीक न कर लिया गया, तो मुझे और बच्चों को किसी पेड़ के नीचे खड़ा होना पड़ेगा। दो सौ रुपये दोगे, तो गेहूँ कटते ही, तुम्हारा रुपया तुमको वापिस कर दूँगा।" नारायणदास नरम आदमी था। मटरु को इनकार न कर सका। उसने अपने बटुवे से दो सौ रुपये निकालकर दिये। मटरु ने यह ऋण निश्चित समय पर न चुकाया। एक फसल कटी। दूसरी भी कट गई। एक बार सेठ ने मटरु से कहा—क्यों भाई मटरु वह कर्ज चुकाया ही नहीं!"

"क्या कर्ज!" मटरु ने कहा।

"उस साल, घर ठीक करने के लिए गरमियों में दो सौ रुपये जो लिए थे। तुम इस तरह बात कर रहे हो, जैसे कुछ याद ही न हो।" सेठ ने कहा।

"अगर मैं भूल भी गया था, तुम्हारे पास तो दस्तावेज होगा। उसे भेज दो मैं दे दूँगा।" मटरु ने कहा।

"तुमने तो कोई दस्तावेज लिखकर न दिया था। मैंने भी यह सोचकर कोई कागज न लिखवाया कि कर्ज जल्दी दे ही दोगे।" सेठ ने कहा।

"वाह, यह भी खूब है। भले ही तुम धनी हो। क्या तुम मुझ पर ऐसे कर्ज भी थोप सकते हो, जो मैंने नहीं लिए हैं? यह भी क्या भलमनसाहत है?" मटरु ने गला फाड़कर कहा।

दो चार आदमी जमा हो गये। वे सेठ और मटरु से पूछताछ करने लगे।

सेठ ने जो कुछ गुज़रा था, वह बताया। मटरु ने कहा कि वह सब झूट था।

"जो भी कुछ है गाँव के मुखिया तय कर देंगे, चलो, उनके पास चलो।" गाँव वालों ने कहा।

"मुखिया ही सही, जो कुछ गुज़रा है, उसे सच सच कहने में मुझे क्या डर है!" कहता मटरु सबके आगे चला।

मुखिया बड़ा अक्लमन्द था। बड़ी सूझ बूझ का अनुभवी था। उसने जो कुछ सेठ को कहना था, सुना। मटरु की बात भी सुनी।

"मैं क्या कोई भिखारी हूँ! दो सौ रुपये का कर्ज करने की मुझे क्या पड़ी है! यह सच है कि मैंने फसल बेचकर अपना घर ठीक करवाया था। यदि सेठ ने मुझे कर्ज ही दिया था, तो क्या वह बिना लिखा पढ़ी के दे देता!" मटरु ने पूछा।

मुखिया ने सेठ की ओर मुड़कर पूछा। "आपने मटरु को रुपया कहाँ दिया था। रुपया देते समय क्या किसी ने नहीं देखा था!"

"वहाँ कौन था! एक बड़ के पेड़ के नीचे बैठकर रुपये दिये थे।" सेठ ने कहा।

"तब क्या है। उस बड़ के पेड़ को गवाह बनाया जाय! आप अभी जाकर उस बड़ के पेड़ से कहिये कि मैंने बुलाया है।" मुखिया ने सेठ से कहा।

सेठ ने हिचकते हुए कहा—"क्या बड़ का पेड़ आकर गवाही देगा!"

"जब मैं बुला रहा हूँ, तो वह क्यों नहीं आयेगा! जाकर जल्दी कहो। यह बड़ से कहकर आप चले आना, हम सब आपकी इन्तज़ार करते रहेंगे।" मुखिया ने सेठ को भेज दिया।

वहाँ जो लोग एकत्र हुए थे, मुखिया की बात सुनकर, अचरज में थे। मटरु की खुशी का ठिकाना न था। वह मन ही मन सोच रहा था कि मुखिया पगला गया था। कर्ज़ तो क्या साबित होगा।

थोड़ी देर तक, मुखिया चुप रहा। फिर उसने मटरु से पूछा—"क्यों मटरु, क्या सेठ अब वहाँ तक पहुँच गया होगा!"

"अरे अभी कैसे! वह तो ढाई मील दूर है। तिस पर अभी बारिश हुई है। रास्ते में बड़ा कीचड़ होगा। यही नहीं, वहाँ इतने बड़ के पेड़ हैं कि कौन सा बड़ का पेड़ था, पहिचानना मुश्किल है।" मटरु ने कहा।

मुखिया ने मटरु की पीठ पर लाठी मारकर कहा—"चोर कहीं का, तुम यह भी जानते हो कि किस पेड़ के नीचे रुपये दिये थे।"

मुखिया की सूझबूझ पर सब चकित थे। मटरु मान गया कि उसने कर्ज़ लिया था। उसने चुका भी दिया। मटरु को रुपया तो देने ही पड़े, शर्म के मारे वह फिर कभी सिर उठाकर गाँव में न चल सका।

स्यमंतकमणि

पंचम अध्याय

कहा कृष्ण ने सत्राजित को
बुला सभीके सामने—
"लांछन मुझपर किया व्यर्थ ही
और अकारण आपने।

किसने मारा था प्रसेन को
किसने थी मणि छीन ली,
नहीं आपने जाना कुछ भी
मेरी ही निन्दा खूब की।

नहीं लोभ इस मणि का मुझको
रहे मुबारक आपको,
अब न आप कहिएगा पापी
कभी किसी निष्पाप को!"

इतना कहकर यदुनायक ने
फेंक दी मणि उसके आगे
'वाह वाह' कर उठे लोग सब
लगे नाचने उनके आगे।

सत्राजित लज्जित हो बोला—
"हुई बहुत मुझसे ही भूल,
क्षमा करें हे कृष्ण, आप हैं
करुणासागर, मंगलमूल!

मेरे कारण अभी आपको
पड़ा बहुत ही कष्ट उठाना,
क्षोभ मुझे अपने ही ऊपर
थूके मुझपर सदा जमाना।

मैंने भारी पाप किया है
दुर्मति सिर पर रही सवार,
करें आप अब दया दीन पर
चिंता से लें मुझे उबार।

जो सत्यभामा एकलौती
मेरी है कन्या सुकुमार,
उसे सौंपने की इच्छा है
करें आप उसको स्वीकार।"

"यात्रिक"

बाद उसीके सत्राजित ने
किया वहीं पर कन्यादान,
औ' दहेज में मणि यह देकर
किया कृष्ण का अति सन्मान।

लेकिन बोले कृष्ण उसी क्षण—
"मणि यह रखिये आप ही,
यही आपको सब सुख देगा
रखिये इसको आप ही।"

हुए मुदित सब लोग वहाँ पर
देख कृष्ण का यह व्यवहार,
लगे उसी क्षण ज़ोर-ज़ोर से
करने उनकी जयजयकार।

लेकिन बैठे मौन वहीं पर
थे कृतवर्मा औ' अक्रूर,
ईर्ष्या की थी आग धधकती
उनके अन्तर में भरपूर।

शतधन्वा को उन दोनों ने
बहुत बहुत यों उकसाया—
"सत्यभामा मिली न तुमको
और न मणि ही मिल पाया।

बैठे ही चुपचाप रहोगे
या तुम अब कुछ यत्न करोगे?
दुख-ज्वाला से जलोगे
या मन का सब क्लेश हरोगे?

सत्यभामा नहीं मिलेगी
उसकी तो अब आशा छोड़ो
लेकिन किसी तरह भी मणि को
हथियाने का यत्न न छोड़ो।"

शतधन्वा ने कहा तुरत ही—
"अरे, नहीं मैं मौन रहूँगा,
किसी तरह भी मणि को तो मैं
हथियाकर ही शीघ्र रहूँगा!"

लक्षागृह में पाण्डवों के
जलने की सुनकर अफवाह
उसी समय हस्तिनापुरी की
पकड़ी मनमोहन ने राह।

कृष्ण गये हस्तिनापुरी औ'
शतधन्वा को मिल सुयोग,
सोचा नहीं जरा भी उसने
थूकेंगे उसपर ही लोग।

सत्राजित के गेह गया वह
सोता था जब सब संसार,
निद्रित सत्राजित के उर में
भोंकी उसने तीक्ष्ण कटार।

फिर जल्दी ही उसने घर का
डाला कोना-कोना छान,
मिला अंत में मणि उसको जब
भागा तत्क्षण चोर समान।

हुआ सवेरा औ' दिनकर का
फैला जग में अरुण प्रकाश,
जमा हो गयी भीड़, देखने
सत्राजित की विकृत लाश।

शतधन्वा पर ही सब लोगों
को पूरा सन्देह हुआ,
छिः छिः करने लगे उसीपर
सबको भारी क्षोभ हुआ।

सत्यभामा ने तत्क्षण ही
हस्तिनापुर भेजा दूत,
कही कृष्ण से जाकर जिसने
शतधन्वा की सब करतूत।

कृष्ण तुरत ही दौड़े आये
आँखों से देखा सब हाल,
गये तीर्थ को जो हलधर थे
वे भी लौट गये तत्काल।

कहा कृष्ण ने—"कल संध्या तक
शतधन्वा की लूंगा जान!"
सुनकर जिसे सत्यभामा के
अधरों पर दौड़ी मुस्कान।

शतधन्वा को पता चला जब
बहुत बहुत भयभीत हुआ,
कृतवर्मा के पास गया वह
कहा—"दैव विपरीत हुआ!"

कृतवर्मा सब सुनकर बोला—
"कृष्ण बड़ा बलवान है,
उससे झगड़ा करने में तो
नहीं कभी कल्याण है।"

उससे झगड़ा व्यर्थ मोल ले
कौन बुलाये अपना काल,
खड़ा सामने उसके होऊँ—
मेरी ऐसी नहीं मजाल।

शतधन्वा तब भागा-भागा
बोला जा अक्रूर से बोला—
"तुम्हीं बचा सकते हो मुझको
कृष्ण हठी मगरूर से।"

छोड़ो तुम आशा मेरी
नहीं मदद मैं कर सकता हूँ,
तेज कृष्ण का ऐसा है जो
कभी नहीं मैं सह सकता हूँ।"

बोला तब अक्रूर—"सुनो तुम,
नहीं जानते उसकी बात,
कंस-सरीखा बलशाली भी
सह न सका उसका आघात।

"उकसाया था तुम लोगों ने
अब डरकर मुखमोड़ रहे हो,
डाल मुझे यों संकट में सब
मुझे अकेला छोड़ रहे हो।"

साधारण है पुरुष नहीं वह
महिमा उसकी न्यारी है,
बड़े-बड़े दैत्यों से भी तो
शक्ति न उसकी हारी है।

इतना कहकर मणि उसको दे
घोड़े पर जा चढ़ा तुरन्त,
और वेग से भागा—देखें
होता है कैसा अब अन्त!

अग्निद्वीप

[१७]

[भालू का चमड़ा पहिननेवाले उग्रदत्त को अपने सरदार कन्ध के पास ले गये। कन्ध ने उग्रदत्त से एकपाद को मारने की सहायता माँगी। मगर उसने साथ यह भी कहा कि एकपाद को मारना सम्भव न था। यदि उसने किसी का खून देखा या किसी ने उसका खून देखा, तो वह अवश्य मर जायेगा। उसके बाद—]

शेर का चमड़ा पहिननेवालों के सरदार एकपाद की असाधारण शक्तियों के बारे में सुनते ही उग्रदत्त काँप उठा। कन्ध जो कह रहा था, उसमें कोई झूट न था। जब तक एकपाद को मार नहीं दिया जाता, तब तक न वह, न उसके साथी ही उस द्वीप को छोड़कर जा सकते थे। यही नहीं, सामन्त सुदर्शन की लड़की चन्द्रसेना भी उसी दुष्ट के हाथ में ही थी। बिना खून खराबी के एकपाद को कैसे मारा जाय!

"उसको मारना एक भयंकर समस्या है।" कन्ध ने कहा। "एक बार उसको मेरे सैनिकों ने अकेला पकड़ लिया। पर इससे पहिले कि उसे वे भालों से मार सकें, उसने अपनी तलवार से मुँह पर घाव कर लिया। उस खून को देखते ही सारे सैनिक मर गये।"

कोई बात नहीं है।" उग्रदत्त ने मन ही मन सोचा। पर जैसा कि कन्ध ने बताया था, उसे अपने पोषक पिता की सहायता माँगनी ही होगी। जब तक भयंकर साहसी, राक्षस सैनिक नहीं आ जाते तब तक इन भयंकर पक्षियों और शेर का चमड़ा पहिननेवालों का मारना सम्भव नहीं है।

उग्रदत्त यह सोच रहा था कि कन्ध ने उसके पास आकर पूछा—"उग्रदत्त, तुम्हारा निर्णय क्या है? क्या तुम अपने पोषक पिता के पास मदद के लिए खबर भेजोगे या नहीं।"

"वहाँ कौन जाये? क्या मैं ही हो आऊँ?" उग्रदत्त ने पूछा।

कन्ध ने अभी जवाब न दिया था कि रुद्र ने आगे आकर कहा—"कपिलपुर जाकर, यहाँ की खबरें बताकर, मैं सहायता ले आऊँगा। मुझे जाने दीजिये।"

इसको मानते हुए कन्ध ने झट अपना सिर हिलाया। उग्रदत्त भी मान गया। इसके बाद कन्ध ने अपने अनुचरों में से एक को बुलाकर कहा कि रुद्र को भयंकर पक्षियों पर चढ़ाकर, कपिलपुर राज्य के जंगलों में उतारना है। उसने कुछ आनाकानी

"इसका मतलब यह कि उसके सामने जाने में ही खतरा है, फिर उसको कैसे मारा जाय?" उग्रदत्त ने हतोत्साह हो कहा।

रुद्र ने एकपाद के किले की ओर कुछ दिखाते हुए कहा—"एक बार यदि हम उसके किले को घेर लें, तो फिर सोचा जा सकता है कि उसको कैसे मारा जाय। उस समय कोई न कोई तो उपाय सूझेगा ही। उग्राक्ष बड़ा चालाक है।"

"शायद यह रुद्र सोच रहा है कि यदि मेरा पोषक पिता मारा भी गया, तो

दिखाई। उसने हिचकते हुए कहा—"हुजूर, आप जानते ही हैं कि जब से उग्रदत्त को और शेर का चमड़ा पहिननेवाले उठाकर लाये हैं, तब से राक्षस और लोग भी दिन-रात भयंकर पक्षियों की ताक में बैठे हैं। अगर हम जंगलों में उतरेंगे तो वे मुझे और इसको भी मार देंगे, हम अपनी बात कह भी न पायेंगे। वे लोग हम पर इतना खौफ खाये हुए हैं।"

उग्रदत्त कुछ देर उस आपत्ति पर सोचता रहा, फिर उसने कहा—"तो रुद्र एक काम करो। जंगलों में उतरने से पूर्व, तुम अपनी पोषाक का कुछ हिस्सा नीचे फेंक दो। जो पत्र मैं अपने पोषक पिता के नाम लिख रहा हूँ, उसका एक अंश भी नीचे डाल देना। तब उनको सब मालूम हो जायेगा।"

यह उपाय सबको जँचा। प्रातःकाल होते ही यात्रा शुरु करने की व्यवस्था करने के लिए अपने अनुचर और रुद्र को कहकर, कन्ध उग्रदत्त को साथ लेकर, उसके शयनागार में गया, जो उसके लिए पृथक् तैयार किया गया था।

* * *

अपने किले के आंगन में हाथ में माथा रख, दुःखी हो उग्राक्ष सोच रहा था कि उसके दो सैनिकों ने आकर बताया—"सरदार, कोई है। उसकी शायद अक्ल ही मारी गई है।" वह ज़ोर ज़ोर से चिल्लाता खड़ा रहा।

"क्या खतरा है? क्या बात है? क्यों बकवास कर रहे हो? क्या तुम्हारी अक्ल मारी गई है?" उग्राक्ष ने लाल आँखें करते हुए अपने सैनिकों की ओर कुछ देर देखा।

अपने सरदार का मुँह देखते ही दोनों राक्षस घबरा गये। उन्होंने हिचकिचाते

हुए कहा—"कोई अग्निद्वीपवाला, दिन दहाड़े जंगलों के ऊपर मँडराता उतरने की कोशिश कर रहा है। पहरेदारों ने उस पर बाण और गदायें फेंकीं। उसने एक पोटली नीचे फेंक दी और अभी वहीं मँड़रा रहा है।"

"वह पोटली कहाँ है?" उग्रदत्त ने गुस्से में पूछा।

"वह जाकर कहीं पेड़ पर गिरी। हमारे लोग उसे खोज रहे हैं।" उन्होंने कहा।

"तो इस बीच, तुम पगलों की तरह बकते हुए मेरे पास भागे-भागे चले आये। तो वहाँ चलें चले।" गरजता उग्राक्ष अपने सैनिकों के साथ चल पड़ा।

उग्राक्ष के जंगल में कुछ दूर जाने के बाद, एक ऊँचे टीले के पास के बड़े पेड़ के नीचे राक्षस और लोग झुन्ड बनाकर, ललकार रहे थे। और एक भयंकर पक्षी पेड़ के ऊपर चक्कर काट रहा था।

उग्राक्ष को अपनी ओर आता देख, झुन्ड में से एक राक्षस और दो आदमी, उसकी ओर भागे। राक्षस के हाथ में एक छोटा-सा रंगा कपड़ा और लाठी पर लपेटा हुआ एक पत्र था।"

"सरदार, इस भयंकर पक्षी पर तीन आदमी हैं। वे शेर का चमड़ा पहिनने वाले नहीं हैं। उसमें से दो ने भालू का चमड़ा पहिना हुआ है। हो सकता है कि हमें ठगने के लिए उन्होंने यह वेष पहिन रखा हो। उन्होंने यह नीचे फेंक दिया है।" उसने कपड़े और पत्र उग्रदत्त को दे दिये।

उग्राक्ष ने उन्हें लेकर, पत्र खोलकर कहा—"तुम मनुष्यों की इस भाषा को पढ़ने के लिए मुझे देते हो! अक्ल ठिकाने नहीं है क्या! देखो, तो इस

मनुष्य ने यह क्या घसीट रखा है?"
उसने यह कहते हुए पास खड़े आदमी
को वह पत्र दिया।

उसने सब पढ़कर चकित होकर कहा—
"महाराक्षस, यह तुम्हारे गोदी लिए
उग्रदत्त ने अग्निद्वीप से लिखा है। इस
भयंकर पक्षी पर जो तीन सवार हैं,
उसमें एक रुद्र है और बाकी दोनों,
जो भालू का चमड़ा पहिने हुए हैं, वे
हमारे मित्र हैं।"

"ओहो, तो मेरा उग्रदत्त जीवित ही
है। मैं शुरु से ही जानता था कि वह
किसी दिन वापिस आयेगा और मेरे अरण्य
राज्य पर राज्य करेगा। तो वह ही क्यों
नहीं आया, उसने इस रुद्र को क्यों भेजा?
खैर, उन भयंकर पक्षी के सवारों को नीचे
उतरने का इशारा करो।" उग्राक्ष ने
मानों कुछ सन्देह करते हुए कहा।

कुछ राक्षस और लोग पेड़ों पर से, टीलों
पर से हाथ हिला हिलाकर, बड़ी बड़ी
टहनियाँ दिखाकर उतरने के लिए उनसे
कहा। भयंकर पक्षी मँडराता, उग्राक्ष के
पास ही उतरा। तुरत रुद्र नीचे उतरा
और उग्राक्ष के पास भागा भागा गया।

रुद्र को देखते ही उग्राक्ष को बड़ी
खुशी हुई। उसने रुद्र को दोनों हाथों से
उठा लिया। प्रेम से इधर उधर हिलाकर,
उतार कर पूछा—"क्या उग्रदत्त ठीक है?
तुम्हारे साथ वह क्यों नहीं आया?
भारुद्र कहाँ है?"

"उग्रदत्त ठीक है। भारुद्र और सामन्त
सुदर्शन की लड़की चन्द्रसेना शेर का चमड़ा
पहिननेवालों के यहाँ बन्दी है। जब तक
शेर का चमड़ा पहिननेवालों के सरदार,
एकपाद को मार नहीं दिया जाता, तब
तक न वे, न उग्रदत्त ही यहाँ सुरक्षित

वापिस आ सकते हैं। इसलिए उग्रदत्त ने तुम्हें यथाशीघ्र सहायता के लिए आने को कहा है।"

"मेरा लड़का! और उसका मेरी मदद माँगना! क्या कह रहे हो? अगर उसने भागना भी चाहा, तो मैं हाथ पैर बाँधकर उसको किले में डाल दूँगा। नहीं तो मेरे बाद इस अरण्य राज्य का नायक भला कौन होगा?" कहता हुआ उग्राक्ष इतनी ज़ोर से गरजा कि सारा जंगल गूँज उठा।

उग्राक्ष जब थोड़ा ठंडा हुआ, तो रुद्र ने अग्निद्वीप के दोनों शत्रु पक्षों के बारे में और भालू का चमड़ा पहिननेवालों के सरदार कन्ध के बारे में बताया। उसने यह भी कहा कि कैसे उन्होंने उनकी सहायता की थी।

"हमें किश्तियों में जाना होगा। अग्निद्वीप पहुँचने के लिए दो दिन और दो रात लगेंगे। रास्ता दिखाने के लिए मेरे साथ एक भालू का चमड़ा पहिननेवाला आया है।" कहकर उग्राक्ष से उसने उसका परिचय कराया।

फिर रुद्र, उस भालू का चमड़ा पहिननेवाले को उग्राक्ष के पास छोड़ कर स्वयं अग्निद्वीप चला गया।

उग्राक्ष अपने सैनिकों में से पाँच सौ हट्टे-कट्टे सैनिकों को लेकर, अग्निद्वीप के लिए निकल पड़ा। वे बड़े-बड़े जंगलों में से नदी नाले पार करते, सप्ताह बाद समुद्र तट पर पहुँचे।

पहिली बार बहुत से राक्षस समुद्र देख रहे थे। जहाँ तक नज़र जाती थी, वहाँ तक पानी का प्रवाह देख वे चकित रह गये।

"इतने बड़े समुद्र के बीच, ज़मीन भला कैसे होगी? इसमें ज़रूर कोई धोखा है?

हमें पानी की मौत मरनी होगी।" वे आपस में फुसफुसाने लगे।

यह बात कान में पड़ते ही उग्राक्ष रौद्र हो उठा। वह चिल्लाया—"पेड़ों को काट कर, इस तरह किश्तियाँ बनाओ कि एक एक किश्ती में पचास-पचास लोग बैठ सकें। अगर तुमने उन्हें सावधानी से बनाया, तो तुम अग्निद्वीप सुरक्षित पहुँचोगे। नहीं तो जैसे तुम डर रहे हो, वैसी ही तुम पर गुज़रेगी।"

उग्राक्ष की इस घोषणा से एक ओर तो उनको डर लगा और दूसरी ओर उनमें आत्म विश्वास भी पैदा हुआ। उन्होंने बड़े-बड़े पेड़ उखाड़ फेंके। उनकी टहनियाँ और पत्ते आदि निकाल दिये। फिर पेड़ के तनों को एक साथ बाँधकर, उनसे उन्होंने तमेड़ें बनाईं।

जब सब तैयार हो गया और वे समुद्र यात्रा पर निकलने ही वाले थे कि चित्रसेन के यहाँ से एक दूत आया। उसके द्वारा, उग्राक्ष को अग्निद्वीप की हालत और यह बात भी पता लगी कि चित्रसेन जानता था कि उग्रदत्त जीवित था। चित्रसेन ने दूत द्वारा खबर भेजी थी कि वह भी सैनिक सहायता भेजेगा। "उनके लड़के को शेर का चमड़ा पहिननेवाले उठाकर ले गये हैं, यह जानकर महाराजा और महारानी दुःख सागर में गोते लगा रहे हैं। इसके साथ जब उनको मालूम हुआ कि वे सामन्त सुदर्शन की लड़की, चन्द्रसेना को भी उठाकर ले गये हैं, तो और भी दुःखी हुए। इस सामन्त सुदर्शन ने चित्रसेन की उन युद्धों में, जो उसने नागवर्मा के साथ लड़े थे, बड़ी मदद की थी। वह महारानी का बन्धु भी था। वे यह भी सोच रहे थे कि अच्छा होगा यदि राजकुमार का

विवाह चन्द्रसेना के साथ कर दिया जाय।" दूत ने कहा।

दूत की बातें सुनते ही उग्राक्ष गुस्से से कांपने लगा। उसने पत्थर की गदा इस तरह उठाई, जैसे दूत को मारने जा रहा हो। "वह युवराज नहीं है। वह मेरा लड़का है। मेरे लड़के के लिए दुखी होने का हक तुम्हारे राजा और रानी को नहीं है—यह उनसे कह देना। यह सामन्त कौन है? सुदर्शन कौन है? मैंने कभी उसका नाम तक नहीं सुना है। मैं जानता हूँ कि उसकी लड़की चन्द्रसेना उग्रदत्त के योग्य है कि नहीं। मालूम। हुआ? जाओ।" उग्राक्ष गरजा।

यह सोचकर कि उग्राक्ष से और कहा गया, तो वह मुझे भी मार बैठेगा, दूत बिना पीछे देखे, वहाँ से भाग गया।

उसके बाद उग्राक्ष की आज्ञा होते ही राक्षसों ने कुछ दूर तमेड़ें खींची, फिर उन पर पशुओं के चमड़े से बने पालों को फहरा दिया। सबसे पहिली तमेड़ में रास्ता दिखानेवाला भालू का चमड़ा पहिननेवाला था।

राक्षसों की तमेड़ें बिना किसी विघ्न के उस दिन और रात को समुद्र में चलती गईं। किन्तु अगले दिन सवेरे उन्हें दूरी पर लपटें आकाश को छूती दिखाई दीं। "अग्निद्वीप, अग्निद्वीप" कुछ भय में, कुछ उत्साह में राक्षस चिल्लाये। इसके कुछ देर बाद, उस तरफ़ से कोई काली चीज़ आती दिखाई दी। देखते-देखते वह एक भयंकर पक्षी के रूप में तमेड़ों के ऊपर प्रत्यक्ष हुई।

(अगले अंक में-समाप्त)

देवताओं का पक्षपात

विक्रमार्क ने हठ न छोड़ा। वह फिर पेड़ के पास गया। शव उतार कर, कन्धे पर डाल, हमेशा की तरह चुपचाप श्मशान की ओर चल पड़ा। तब शव में स्थित बेताल ने कहा—"राजा, मुझे नहीं मालूम तुम किन देवताओं को खुश करने के लिए यह सब कर रहे हो। पर मैं तुम्हें खबरदार किये देता हूँ। देवता पक्षपात करते हैं। वे कई बार जो उनकी उपासना करते हैं, उनको भी वर नहीं देते, और उनको दर्शन देते हैं, जो उनकी परवाह तक नहीं करते। यह दिखाने के लिए तुम्हें विक्रमतुंग की कहानी सुनाता हूँ। सुनो।" यह कह कर उसने यह कहानी सुनानी शुरु की।

कभी पाटलीपुत्र का विक्रमतुंग राजा था। वह दान में, या रण में, कभी किसी से पीछे न था। एक दिन राजा अपने नौकर चाकरों को लेकर शिकार के लिए निकला। रास्ते

बेताल कथाएँ

में एक जगह एक ब्राह्मण बिल्वहोम करता हुआ दिखाई दिया। "ब्राह्मण, तुम किसलिए यह बिल्वहोम कर रहे हो?" राजा ने पूछना चाहा। पर चूंकि उसका ध्यान शिकार पर केन्द्रित था इसलिए उसने ब्राह्मण से कुछ न कहा—और जंगल में चला गया।

जंगल में उसने जी भर शिकार खेला। फिर अपने नौकर चाकरों के साथ पाटलीपुर के लिए निकल पड़ा। रास्ते में उसको फिर वही ब्राह्मण दिखाई दिया। वह तब भी बिल्वहोम कर रहा था। इस बार राजा ने ब्राह्मण के पास आकर नमस्कार करके कहा—"ब्राह्मण, क्यों यह बिल्वहोम कर रहे हो?" ब्राह्मण ने कहा—"राजन्, मेरा नाम नागशर्मा है। मैं ये बेल के फल अग्निदेव को देकर, उसकी दया से सोने के बेल पाने के लिए यह होम कर रहा हूँ। कितने ही दिनों से श्रद्धा पूर्वक यह कर रहा हूँ। पर, अभी तक अग्नि का साक्षात्कार नहीं हुआ है।" यह सुन राजा ने कहा—"तो मुझे एक बेल दो। मैं भी देखूँ कि मेरे लिए अग्निदेव प्रत्यक्ष होते हैं कि नहीं!"

ब्राह्मण चकित रह गया। "यह क्या राजा! मैं शुद्ध पवित्र हो श्रद्धापूर्वक इतने दिनों से अग्नि की उपासना कर रहा हूँ तब भी अग्निदेवता प्रत्यक्ष न हुए। तुम अपवित्र हो। तुमने व्रत भी नहीं किया है। यूँ ही बेल दे देने से क्या अग्निदेवता प्रत्यक्ष हो जायेंगे!

"इस तरह की बातें न करो। एक बेल मुझे दो, फिर देखें क्या होता है!" राजा ने कहा।

ब्राह्मण मान गया। और उसने एक बेल दे दिया। राजा ने उस फल को

लेकर कहा—"अग्निदेव! यदि तुम्हारे लिए यह फल काफ़ी न हो, तो मैं अपना सिर काट कर होम करूँगा।" कहते हुए उसने फल अग्नि में डाल दिया।

तुरत अग्निकुण्ड में से अग्निदेवता निकला। एक सोने के बेल को उसने राजा के हाथ में रखा। राजा उसे ब्राह्मण को देकर पाटलीपुर चला गया।

इस घटना के कुछ दिनों बाद दत्तशर्मा नाम का एक ब्राह्मण ब्रह्मचारी ने आकर राजा से कहा—"हमारे सिद्धगुरु की कृपा से मैंने एक भस्म तैयार की है। ताम्बा पिघालकर अगर उसमें चुटकी भर यह भस्म डाल दी गई वह सारा ताम्बा सोना हो जाना चाहिए। मैंने यह होता गुरु के समक्ष एक बार देखा है। परन्तु जाने क्यों यह भस्म मेरे हाथ काम नहीं कर रहा है।" राजा ने उस ब्रह्मचारी से कहा—"मेरे सामने करो।"

सैनिक कुछ ताम्बा लाये। ब्रह्मचारी ने उसे पिघालकर उसमें चुटकी भर भस्म डाली परन्तु ताम्बा सोना नहीं बना।

क्या हुआ था, ब्रह्मचारी तो न जान सका। पर, राजा, जिसने अग्निदेवता को प्रसन्न किया था, यह सब जान गया। ब्रह्मचारी ने जब भस्म छिड़की, तब एक अदृश्य यक्ष आया, और उस भस्म को ले गया। उसने उसको ताम्बे में न गिरने दिया। यह देख, राजा ने ब्रह्मचारी के हाथ से भस्म ले ली और स्वयं ताम्बा पिघालकर उसमें डाल दी। इस बार उसे यक्ष न ले जा सका। वह हंसकर चला गया।

राजा का भस्म डालना था कि सारा ताम्बा सोना हो गया। ब्रह्मचारी ने यह देखकर, राजा को बता दिया कि किस प्रकार वह भस्म बनाया जाता था।

प्रत्युपकार में राजा ने उस ब्रह्मचारी का विवाह करवा दिया और उसकी गृहस्थी के लिए जो कुछ चाहिये था, वह सब दिया।

इसके बाद राजा ने इतना सोना बनाकर बाँटा कि उसके राज्य में दारिद्र्य ही न रहा।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर पूछा—"राजा, दिक्पालकों में एक, समस्त संसार के आधारभूत अग्नि ने राजा के प्रति क्यों पक्षपात किया था? क्यों उस ब्राह्मण पर, जिसने इतने दिन श्रद्धापूर्वक बिल्व होम किया था, अग्नि प्रसन्न न हुआ था, और राजा के एक ही बिल्व होम से वह क्यों सन्तुष्ट हो गया? फिर उस ब्राह्मण को एक सोने का बेल ही क्यों मिला और राजा को सोना बनाने के लिये भस्म बनाने का मन्त्र क्यों मिला? अगर तुमने इन प्रश्नों का जान बूझकर उत्तर न दिया तो तुम्हारा सिर टुकड़े टुकड़े हो जायेगा।

इस पर राजा ने कहा—"देवताओं की जो उपासना करते हैं, उनमें निष्ठा, और श्रद्धा का होना ही काफ़ी नहीं है, उनको कृत निश्चय भी होना चाहिए। ब्राह्मण इसी विचार से होम करता जाता था कि अग्नि देवता जब दर्शन देंगे, देंगे परन्तु राजा धुन का पक्का था, उसने कहा कि यदि ये दर्शन न देंगे, तो वह अपना सिर ही अर्पित कर देगा। इसलिए अग्नि देवता से उसका तुरन्त साक्षात्कार हो गया। ब्राह्मण और राजा को जो फल मिले, वे उनकी प्रकृति के ही अनुकूल थे न कि उनके अर्पित बिल्व फलों की संख्या के अनुकूल।

राजा का इस प्रकार मौन भंग होते ही बेताल शव के साथ अदृश्य हो गया और पेड़ पर जा बैठा।

चान्दीमल का भेद

एक शहर में चान्दीमल नाम का एक सेठ रहा करता था। वह बड़ा लालची था। परन्तु उसकी पत्नी को दान-धर्म आदि का शौक था।

एक त्योहार के दिन गाँववालों ने चन्दा जमा करके, कथा करवाने की सोची। चान्दीमल ने एक दमड़ी भी न दी।

"मुझे ऐसे बेकार कामों में दिलचस्पी नहीं है। मुझे ऐसे मनोरंजनों की कोई ज़रूरत नहीं है।" उसने साफ़ साफ़ कह दिया।

उस दिन से पति-पत्नी में झगड़ा शुरु हो गया। "पैसा ख़ैर, न दिया तो न दिया, कम से कम मोक्ष का मार्ग जानने के लिए तीन बातें तो सुन आओ।" पत्नी ने कहा।

पत्नी ने ज़िद पकड़ी तो चान्दीमल तीन बातें सुनने के लिए मान गया।

उस दिन कथा के लिए बढ़ के नीचे पन्डाल बनाया गया। पन्डाल लोगों से खचाखच भरा पड़ा था। चान्दीमल भी आकर एक तरफ़ बैठ गया। कथक मालायें पहिनकर, पैरों में घूँघरु बाँध रहा था, तो ग्रामाधिकारी ने श्रोताओं की ओर मुड़कर कहा—"क्या सब बड़े बुज़ुर्ग आ गये हैं! या किसी और को आना है!"

"ओहो, शायद कथक की पहिली बात यही है। तीन बातों में एक तो ख़तम हुई।" चान्दीमल ने सोचा।

तब तक जगह पूरी तरह भर चुकी थी और कुछ लोग बैठे हुए श्रोताओं के सामने खड़े थे। ग्रामाधिकारी ने फिर खड़े होकर कहा—"बैठो, बैठो! चान्दीमल ने सोचा

कि यह दूसरी बात थी। क्योंकि जगह न थी, इसलिए कुछ जा भी रहे थे। तब ग्रामाधिकारी ने कहा—"जाओ मत, जाओ मत। कथक आ रहे हैं।" यह सुन चान्दीमल ने सोचा। "अच्छा, जो तीन बातें मुझे सुननी थीं, मैंने सुन ली हैं।" वह उठा। घर चला आया और आराम से सो गया।

यह चान्दीमल की पत्नी को न मालूम हुआ। क्योंकि उसके बहुत कहने पर भी पति ने उसकी बात न सुनी थी इसलिए वह बच्चों को लेकर कथा सुनने चली गई। इस जल्दबाजी में वह घर के किवाड़ बन्द करना भूल गई।

यह सब चोर देख रहे थे। उसके जाते ही वे घर में घुस गये। वे धीमे धीमे कदम रखते अन्दर गये। चान्दीमल सोता सोता बड़बड़ाया—"क्या बड़े बुजुर्ग सब आ गये हैं, या किसी को आना है?"

चोर डर गये।

यह जान कि घर का मालिक जगा हुआ था, जो जहाँ था, वह वहाँ बैठ गया।

तब चान्दीमल बड़बड़ाया—"बैठो, बैठो।" उसने ग्रामाधिकारी की बात दुहराई।

"अरे यह तो यह भी जानता है कि हम बैठे हुए हैं। इसने हमें देख ही लिया होगा।" यह सोच वे एक एक करके उठने की कोशिश करने लगे।

इतने में चान्दीमल ने सोते हुए कहा—"जाओ मत, जाओ मत, कथक आ रहे हैं।"

यह सोच कि मालिक उनका पीछा कर रहा था, बिना पीछे देखे ही वे जोर से भागने लगे।

मुद्राराक्षस

मगध देश की राजधानी पाटलीपुत्र का नन्द राजा था। उसका मन्त्री राक्षस था। वह बड़ा स्वामिभक्त और योग्य था।

नन्द की दो पत्नियाँ थीं। एक क्षत्रिय स्त्री थी, नाम था सुनन्दा। दूसरी स्त्री थी शूद्र, नाम था मुरा। इनमें पहिले मुरा के ही लड़का पैदा हुआ। माता के नाम पर उसे सब मौर्य कहा करते। मौर्य के पैदा होने के कुछ समय बाद सुनन्दा ने नौ लड़कों को जन्म दिया। इनका नाम नवनन्द रखा गया।

कुछ समय बाद नन्दराजा ने राज्य भार, अपने लड़कों को सौंप देने का निश्चय किया। उनमें मौर्य यद्यपि बड़ा था, तो भी उसने उसको सेनापति का ही पद दिया। नवनन्द को उसने राजा बनाने की ठानी।

मौर्य ने सोचा कि उसके साथ अन्याय किया गया था। नवनन्द मूर्ख थे और वह बुद्धिमान था। प्रजा को भी मौर्य पर ही अधिक अभिमान था। उसने नौ नन्दों के बीच में भेद पैदा किया। ऐसा मालूम होता था कि मौर्य और उसके सौ लड़के, मगध राज्य के ही टुकड़े टुकड़े करके रहेंगे। इसलिए नवनन्द और उनके मन्त्रियों ने मौर्य वंश का निर्मूलन करने का षड्यन्त्र किया और उन्हें एक पाताल गृह में ले जाकर, उसके द्वार बन्दकर दिये।

इस पाताल गृह में सौ थालों में भोजन और सौ दीप थे। यदि एक ने वह भोजन किया, तो वह कई दिन आ सकता था। इसलिए मौर्य ने अपने लड़कों में से सब से छोटे, चन्द्रगुप्त को वह भोजन देने का निश्चय किया। उससे यह शपथ भी करवा

ली कि यदि पाताल्गृह से बाहर जाने का मौका मिला, तो मौर्यों की तरफ़ से नन्दों से बदला लेगा ।

थोड़ा समय बीता । वंगदेश से कुछ आदमी एक पिंजड़े में शेर की मूर्ति, पाटलीपुत्र के राजा के दरबार में लाये । उस पिंजड़े पर लिखा था—"यदि कर सको, तो इस शेर को पिंजड़े से बाहर करो ।" पिंजड़े में कहीं द्वार न था। किसी को न सूझा कि कैसे निकाला जाय।

"चन्द्रगुप्त मौर्य जीवित रहता तो वह लड़का इसका उपाय बताता ।" दरबारियों में से एक ने कहा । तुरन्त पाताल्गृह का द्वार खोलकर देखा गया और सब मौर्य तो मर गये थे, पर चन्द्रगुप्त ही जीवित था।

चन्द्रगुप्त जान गया कि पिंजड़े में लाख का बना ही शेर था, उसने पिंजड़े में जलते लोहे का सीखचा डाला। शेर पिघल गया और पिघलकर बाहर आ गया । चन्द्रगुप्त के उपाय की सब ने प्रशंसा की ।

यह सोच कि इतने अक़्लमन्द लड़के से कोई न कोई काम निकल ही आयेगा नवनन्दों ने चन्द्रगुप्त को भोजनशाला का अधिकारी नियुक्त किया । इस प्रकार वह जीवित बाहर निकला । उसने अपने मृत पिता और भाइयों का श्राद्ध भी किया । वह राख से ढकी आग की तरह रहने लगा । भोजनशाला से सम्बन्धित कार्य देखता रहा ।

एक दिन चन्द्रगुप्त ने नगर से बाहर एक ब्राह्मण युवक को देखा । उस युवक का व्यवहार देख, उसको आश्चर्य हुआ क्योंकि उसने पैर में चुभे दूब के कांटे को निकाला, और उसे जलाकर भस्म कर दिया, फिर उसे पानी में मिलाकर पी गया था ।

"महाशय ! आपने दूब के कांटे को क्यों जलाया ?" चन्द्रगुप्त ने पूछा ।

"क्योंकि वह मेरे पैर में चुभा था। इसलिए मैंने उसे भस्म कर दिया।" युवक ने कहा।

"परन्तु उसको पानी में मिलाकर पीने का क्या अर्थ है?" चन्द्रगुप्त ने फिर पूछा।

"यदि मैंने ऐसा न किया, तो मेरा क्रोध मुझे ही जला देगा।" विचित्र ब्राह्मण युवक ने कहा।

चन्द्रगुप्त उसका अहंकार, लगन देख चकित हुआ। मेरे लिए यह उपयोगी हो सकेगा, उसने सोचा। "आपका नाम क्या है?" आप कहाँ जा रहे हैं?" उसने पूछा।

"मेरा नाम विष्णुगुप्त है। सब मुझे चाणक्य कहते हैं। राजाओं के साथ बैठकर खानेवाले ब्राह्मणों में सब से आगे बैठकर भोजन करने जा रहा हूँ। इसकी व्यवस्था करनेवाला, सुनता हूँ, कोई शूद्र है। मैं उससे मिलने जा रहा हूँ।" ब्राह्मण युवक ने कहा।

"स्वामी, मैं ही वह शूद्र हूँ।" चन्द्रगुप्त ने कहा।

नन्द महाराजा के पोते को शूद्र बताये जाने के कारण चाणक्य को बड़ा कष्ट हुआ। वह पछताया भी। फिर उसने पूछा—"यदि तुमको मुझ से कोई काम हो, तो बताओ। मैं कर दूँगा।"

"आप एक दिन हमारे घर आइये। यही मैं चाहता हूँ।" चन्द्रगुप्त ने कहा।

उसने उसके घर जाकर मालूम किया कि कैसे नवनन्दों ने मौर्य वंश का निर्मूलन करने के लिए षड्यन्त्र रचा था और चन्द्रगुप्त ने क्यों उनसे बदला लेने की शपथ की थी।

चाणक्य फिर भोजनशाला में गया। पूर्व की ओर नौ पत्तल लगी थीं। उनके

बगल में नौ चान्दी के पात्र थे। वह नौ नन्दों के भोजन करने का स्थान था। उसके सामने कुछ चान्दी के लोटे, और एक ओर पत्तल लगी थी। यही नहीं, वहाँ चारों ओर पत्तलें थीं। यह मालूम करके कि वह चान्दी के लोटोंवाला स्थान योग्य ब्राह्मण का था। और बाकी साधारण ब्राह्मणों का, चाणक्य उस मुख्य स्थान पर जा बैठा। थोड़ी देर में नवनन्द वहाँ आये। चाणक्य को देखकर उन्होंने पूछा—"कौन है यह लड़का? इसको बाहर करो।"

"मेरी योग्यता की परीक्षा कीजिये। यदि मुझ से अधिक कोई योग्य हो, तो उनको आप यह स्थान दे सकते हैं।" चाणक्य ने कहा। परन्तु नन्द बिगड़ पड़े। और चाणक्य की चोटी पकड़कर, उन्होंने उसे बाहर धकेल दिया।

"तुम्हारा सर्वनाश जबतक करके यह राज्य, एक शूद्र को न दे दूँगा, तब तक मैं अपनी चोटी नहीं बाँधूँगा।" यह प्रतिज्ञा करके चाणक्य चला गया।

नगर में चाणक्य का एक मित्र था। उसका नाम इन्द्रशर्मा था। उसे कई गुप्त विद्यायें आती थीं। उसमें कुछ शक्तियाँ थीं। "तुम्हें यह दिखाना होगा कि तुम नन्द राजाओं और राक्षस मन्त्री के मित्र हो, और मेरी मदद करनी होगी।" चाणक्य ने इन्द्रशर्मा से कहा। और उसे यह करने के लिए मना भी लिया।

इन्द्रशर्मा ने बौद्ध मान्त्रिक का वेष धरा। अपना नाम जीवसिद्ध रखा, वह अपनी शक्ति से कुछ में रोग पैदा करता और उन्हें ठीक कर देता। उसने यह प्रचार करना शुरु किया कि यदि चाणक्य अपनी मन्त्रशक्ति से रोग पैदा करता, तो वह उसे ठीक कर देता।
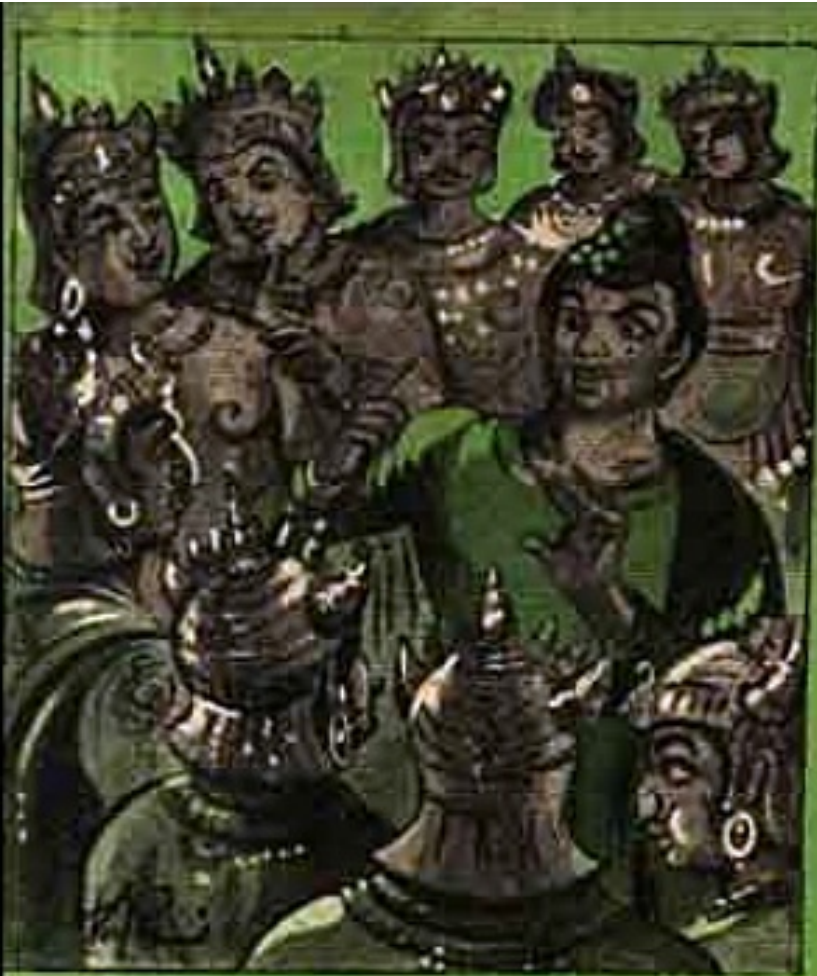
चाणक्य की शपथ सुनकर राक्षस मन्त्री डर रहा था। उसने जीवसिद्धि को पास बुलाकर चाणक्य के कृत्यों को रोकना चाहा।

एक दिन जीवसिद्धि ने नवनन्दों से कहा—"आपके लिए यह श्रेयस्कर नहीं है कि चन्द्रगुप्त इस नगर में रहे। उसे वर्धमान नगर के किरात राजा के पास भेज दीजिये।" नवनन्दों ने वैसा ही किया। चन्द्रगुप्त ने, जो कुछ उसके पास था, उसे किरात राजा को दे दिया, और उसे अपनी तरफ़ कर लिया।

पाटलीपुत्र के उत्तर में, काफ़ी दूरी पर पर्वत प्रान्त पर पर्वत नामक म्लेच्छ राजा का राज्य था। चाणक्य ने उस राजा के पास जाकर कहा—"मैंने यह प्रतिज्ञा की है कि नवनन्दों को नष्ट करके चन्द्रगुप्त को राज्य दूँगा। उसके पास सेना नहीं है। यदि आपने अपनी सेनायें दीं, और उसे जिताया तो आपको आधा राज्य दूँगा।"

पर्वत ने अपने भाई और लड़के से सलाह मशवरा किया। नन्दों का आधा राज्य चाणक्य की सहायता से जीत लेंगे, और तब चन्द्रगुप्त को निर्बल करके पूर्ण राज्य लिया जा सकेगा, यह सोचकर, उन्होंने चाणक्य की बात मानली।

एक तरफ़ से पर्वत राजा की सेनाओं ने, दूसरी तरफ़ से चन्द्रगुप्त और किरातों की सेना ने पाटलीपुत्र पर आक्रमण किया। नवनन्द पर्वत राजा की सेनाओं से युद्ध करने गये। और युद्ध में मारे गये। मन्त्री राक्षस चन्द्रगुप्त की सेनाओं से लड़ने गया। चन्द्रगुप्त ने राक्षस को नमस्कार करके कहा—"मेरे राज्य का भाग मुझे दीजिये। मैं युद्ध करना छोड़ दूँगा।" परन्तु राक्षस

ने अपशब्द कहे। और जब इतने में उसको मालूम हुआ कि नवनन्द मारे गये थे, वह युद्ध छोड़कर नगर में चला गया।

राजाओं की मृत्यु की कारण नगर में अराजकता फैली हुई थी। नागरिकों ने चाणक्य से नगर की रक्षा करने के लिए कहा। यदि बूढ़ा राजा जंगलों में चला गया, तो वह यह कर सकेगा, चाणक्य ने कहा। वृद्ध राजा को राक्षस ने ऐसा करने की सलाह दी।

फिर राक्षस ने चन्द्रगुप्त के पास आकर कहा—"अब आधा राज्य तुम्हारा है, और आधा पर्वतक का। मैं पर्वतक के यहाँ मन्त्री नहीं होना चाहता। तुम्हारे पास ही रहूँगा।" चाणक्य की सलाह पर चन्द्रगुप्त इसके लिए मान गया।

पर चन्द्रगुप्त के प्रति राक्षस की नीयत नहीं बदली। उसको मार कर नन्दों से बदला लेने के लिए, उसने कुछ आदमी नियुक्त किये।

वन में रहनेवाले वृद्ध राजा ने चन्द्रगुप्त के पास जहरीले फल भेजे। गुप्तचरों से जब यह बात चाणक्य को मालूम हुई तो उसने वे फल बूढ़े राजा के पास ही भिजवादिये। वृद्ध राजा उन्हें खाकर मर गया।

राक्षस पर इस कारण एक और चोट लगी। फिर भी उसने चाणक्य को मारने का प्रयत्न न छोड़ा। छुपे छुपे वह पर्वतक से भी सन्धियाँ करता रहा।

बौद्ध मान्त्रिक के रूप में चाणक्य के मित्र ने राक्षस मन्त्री से मैत्री कर ही रखी थी। उसने अपनी मन्त्रशक्ति से एक बहुत सुन्दर विषकन्या बनाकर, उसे राक्षस को दिखाकर कहा—"जो कोई इसका आलिंगन करेगा वह तुरत मर जायेगा।

और वह अदृश्य हो जायेगी।" वह उसे राक्षस को देकर चला गया।

परन्तु उसने चाणक्य से भी कहा कि वह विषकन्या राक्षस को दे आया था। थोड़े दिनों बाद राक्षस ने चाणक्य को बुलाकर कहा—"एक बड़ी सुन्दर कन्या मिली है। मैं उसे चन्द्रगुप्त महाराजा को भेंट करना चाहता हूँ। क्या आप उसे ले जायेंगे।"

चाणक्य उस विषकन्या को दरबार में ले गया। भरे दरबार में जब कि राक्षस सुन रहा था, उसने यह सूचित किया कि वह उसे पर्वतक को भेंट देगा। ऐसी परिस्थिति थी कि राक्षस मना भी न कर सकता था। इसलिए उसे भी कहना पड़ा कि ऐसा करना ही उचित था। फिर विषकन्या को पर्वतक के पास भेजा गया। अगले दिन पर्वतक मर गया और विषकन्या का कहीं पता न था।

राक्षस यह जानकर कि उस पर आपत्ति आनेवाली थी, उसी दिन रात को अपने कुटुम्ब को, अपने मित्र चन्दनदास के यहाँ छोड़कर नगर छोड़कर चला गया।

सब जान गये कि पर्वतक की हत्या का कारण राक्षस था। इसी प्रकार घोषणा भी की गई। पर राजद्रोह का दण्ड देने के लिए वह कहीं मिला नहीं।

चाणक्य ने पर्वतक के लड़के के पास एक आदमी को भेजकर कहलाया। "चाणक्य ने ही तुम्हारे पिता को मरवाया है। अगर तुम यहाँ रहे, तो तुम भी मरवा दिये जाओगे।" यह सुन पर्वतक का लड़का डर गया और अपने देश चला गया।

राक्षस ने जब यह बात सुनी, तो वह पर्वतक के लड़के के पास गया। उससे कहा—"चन्द्रगुप्त को मारकर, सारे राज्य

पर राज्य करना। सेना सन्नद्ध करो, मैं तुम्हारे मन्त्री का काम करूँगा।" पर्वतक का लड़का इसके लिए मान गया।

राक्षस भाग गया था, पर उसके नौकर चन्द्रगुप्त को मारने का प्रयत्न कर रहे थे। चन्द्रगुप्त के नगर प्रवेश के अवसर पर चाणक्य ने देखा कि दासवर्मा उत्तर द्वार को विशेषतः अलंकृत कर रहा था। उसे सन्देह हुआ। चन्द्रगुप्त के आने के समय उसी के हाथी पर पर्वतक के भाई को भेजा। जब हाथी उत्तर द्वार के नीचे आया, तो ऊपर से कोई शस्त्र महावत पर गिरा और वह मर गया। फिर दासवर्मा ऊपर से कूदा और पर्वतक के भाई को उसने छुरी भोंककर मार दिया, क्योंकि आधी रात का समय था, दासवर्मा यह भी न जान सका कि किसको उसने मारा था। म्लेछों ने उसको वहीं मार दिया।

एक बार एक वैद्य ने चन्द्रगुप्त की औषधी में विष मिला दिया। चाणक्य वहीं था। उसने उस वैद्य से ही वह औषधी खिलवाई। वैद्य खाकर मर गया।

इस प्रकार चाणक्य, चन्द्रगुप्त की हर तरह से रक्षा करता रहता। यही नहीं गुप्तचरों को नगर में भेजकर सब बातें मालूम किया करता। इन गुप्तचरों में से एक, एक दिन चन्दनदास के घर गया। वह वहाँ जब यमलोक का चित्र दिखा रहा था, तो अन्दर एक लड़का आया। तब एक स्त्री आकर उसको अन्दर ले गई। उस समय उसके हाथ से एक अंगूठी नीचे गिरी। वह अंगूठी गुप्तचर ने चाणक्य के पास पहुँचाई। उसे देखते ही चाणक्य जान गया कि वह राक्षस की थी। कम से कम अब से राक्षस मन्त्री और चन्द्रगुप्त के शत्रुओं में फूट

डालकर चाणक्य ने उसको चन्द्रगुप्त की ओर करने की ठानी।

चाणक्य के मनुष्य, अपने को चन्द्रगुप्त का शत्रु बताकर, उस म्लेच्छ राज्य में गये, जहाँ राक्षस रह रहा था। राक्षस के नौकरों में से कई को मृत्यु दण्ड दिया गया, पर उनको मारा न गया। उनको भी राक्षस के पास लिवा ले जाने के लिए चाणक्य ने कुछ आदमी नियुक्त किये। उनमें से एक ने एक पत्र लिखा। उसमें यह लिखा था कि राक्षस ने चन्द्रगुप्त के पास एक गुप्त पत्र भेजा था। इस पत्र पर चाणक्य ने राक्षस की मुद्रा भी छाप दी।

चाणक्य ने फिर ऐसा दिखाया, जैसे कि उसकी चन्द्रगुप्त से न पटती हो। दोनों खुले तौर पर लड़ने लगे। ये खबरें भी म्लेच्छ राज्य पहुँची। चाणक्य ने जो जाली पत्र बनाया था वह पर्वतक के लड़के के हाथ लगा। उसको विश्वास हो गया कि राक्षस ने ही उसको लिखवाया था, क्योंकि चाणक्य और चन्द्रगुप्त की नहीं पट रही है और राक्षस चाणक्य का स्थान लेना चाहता है। उसे यह भी मालूम हो गया कि विष कन्या की सृष्टि का कारण भी राक्षस था।

राक्षस ने जो कुछ सोचा था, वह सब उल्टा हो गया। वह अपने देश वापिस आया। चाणक्य की सलाह पर चन्द्रगुप्त ने उसको सादर दरबार में बुलाया। चाणक्य और चन्द्रगुप्त ने भी उसको मन्त्री के तौर पर ही देखा। राक्षस का मन भी परिवर्तित हो गया। चाणक्य के प्रयत्न सफल हुए। चन्द्रगुप्त ने अपने सौतेले भाइयों के राज्य को तो जीता ही उनके मन्त्री को भी उसने अपने पक्ष में कर लिया।

जब आँखें खुलीं

कभी भाग्यवती नगर का राजा सौभाग्यवर्मा था। उसका परिपालन न्यायपूर्ण था। उसके राज्य में प्रजा को कोई कष्ट न था। सब सुखी थे। वे राजा को ही अपना भगवान मानते थे।

सौभाग्यवर्मा के साठवें वर्ष की उम्र में एक लड़का पैदा हुआ। उसका नाम सुन्दर रखा गया। बहुत वर्षों बाद लड़का पैदा हुआ था, इसलिए बूढ़ा राजा फूला न समाता था। पर जब वह उसके भविष्य के बारे में सोचता तो चिन्तित हो उठता। यदि वह उसके होते राजा होने लायक बड़ा न हुआ, तो जब तक वह सोलह वर्ष का नहीं हो जाता, तो मन्त्री को राजप्रतिनिधि बनाना पडेगा। उसके बाद सम्भव है, न सुन्दर को राज्य मिलेगा, न जीवन ही। यही चिन्ता वृद्ध राजा को दिन रात सताती। वह दुखी रहता।

जैसा उसको भय था, अभी सुन्दर दस वर्ष का ही था कि राजा बीमार पड़ा। बहुत चिकित्सा करने पर भी उसकी हालत न सुधरी। सौभाग्य वर्मा ने यह सोचकर कि मृत्यु पास आ रही थी, "बाबा" को बुलवाया। वह छुटपन से उसी के भरोसे जी रहा था। उसने उससे धीमे से कहा—"बाबा, लगता है, जल्दी ही मेरी मौत हो जायेगी। सुन्दर अभी बच्चा है। यदि उसे राजा भी बना दिया गया, तो वह राज्य न कर सकेगा। इसलिए वह जब तक सोलह वर्ष का नहीं हो पाता, तब तक महामन्त्री को ही राज्य-भार उठाना पड़ेगा। महामन्त्री राज्य कार्य के निर्वहण में समर्थ ही है। परन्तु छः साल राज्य करने के बाद न मालूम उसका मन कैसे बदले। यदि सुन्दर को राज्य न मिला तो

सुब्रह्मण्यं

कोई बात नहीं। यही काफी है कि उसके जीवन पर कोई आपत्ति न आये। मेरे लिए तुमसे अधिक कोई विश्वासपात्र नहीं है। सुन्दर के प्राणों की रक्षा करने की जिम्मेवारी तुम पर डाल रहा हूँ। इसलिए मैं तुम्हें अन्तःपुर पर सब अधिकार देता हूँ। उनका उल्लंघन महामन्त्री भी नहीं कर सकता। बाकी राजनैतिक बातों से तुम्हारा कोई सरोकार न रहेगा। सुन्दर जब बड़ा हो जायेगा, तो मन्त्री ने स्वयं यदि उसका पट्टाभिषेक कर दिया तो ठीक है, नहीं तो वह स्वशक्ति से अपना राज्य प्राप्त कर लेगा। नहीं तो राज्यभ्रष्ट हो जायेगा।"

फिर सौभाग्यवर्मा ने महामन्त्री को बुलवाकर कहा—"महामन्त्री, मेरा समय हो गया है। सुन्दर लड़का है। जब तक सोलह साल का नहीं हो जाता, तब तक आप ही राज्य का उत्तरदायित्व निभाइये। उसके बाद, उसका पट्टाभिषेक करवाइये और उसकी मदद कीजिये। तब तक सुन्दर "बाबा" के पास रहेगा। बाबा को मैंने अन्तःपुर के सब अधिकार दे दिये हैं। सुन्दर के पालन पोषण के बारे में आप बिल्कुल चिन्ता न कीजिये।"

इसके बाद सौभाग्यवर्मा ने हमेशा के लिए आँखें बन्द कर लीं। कोई ऐसा न था, जो उसकी मौत पर न रोया हो। महामन्त्री महाराजा हो गया। तुरत शासन में कई परिवर्तन हुए। वे सब प्रजा के अनुकूल न थे। यह सोचकर कि नये परिवर्तनों का विरोध करना खतरे से खाली न था, प्रजा चुप रही।

अब "बाबा" सुन्दर की रक्षा कर रहा था। किसी भी हालत में सुन्दर अन्तःपुर से बाहर नहीं जा सकता था।

जो कुछ सुन्दर के लिए खाना बनता, बाबा उसे पहिले स्वयं खाकर देखता। बाबा ने सुन्दर को पढ़ाने के लिए योग्य गुरुओं को नियुक्त किया। उसके साथ पढ़ने के लिए उसने स्वयं बीस लड़कों को चुना। वे लड़के रोज़ अन्तःपुर आते और सुन्दर के साथ पढ़कर चले जाते।

छः वर्ष बीत गये। सुन्दर सोलह वर्ष का हो गया। राजप्रतिनिधि के तौर पर महामन्त्री काम कर रहा था। उसने सुन्दर के राज्याभिषेक के लिए कोई प्रयत्न न किया। और तो और उसका जीवित रहना भी उसको अखरा। उसने अपने साथियों से कहा कि जो कोई सुन्दर का सिर काटकर लायेगा, उसको बहुत-सा ईनाम दिया जायेगा।

चूँकि "बाबा" सुन्दर की हर तरह से रक्षा कर रहा था और उसे अन्तःपुर से बाहर नहीं आने दे रहा था इसलिए उस पर कोई आपत्ति न आई।

दो वर्ष और बीत गये। महामन्त्री ने एक कन्या चुनकर सुन्दर से उसका विवाह किया। चूँकि बाबा अपना कर्तव्य निभानेवाला व्यक्ति था इसलिए उसने पति-पत्नी को एक क्षण भी अकेला न रहने दिया। पति-पत्नी को उसके सामने ही बातें करनी होतीं। रात के समय दोनों अपने अपने कमरों में सोते। सुन्दर की पत्नी उसे पान तक न दे सकती थी।

बाबा का यह कड़ा नियन्त्रण सुन्दर को बुरा लगा। चूँकि वह बाबा के नियन्त्रण में ही बचपन से पला था, इसलिए उसने कुछ न कहा। विवाह के बाद भी वह ब्रह्मचारी का जीवन व्यतीत कर रहा था।

समय गुज़रता जाता था और सुन्दर के राज्याभिषेक की सम्भावना कम होती जाती थी। इस बारे में प्रजा असन्तुष्ट थी और कुछ कर न पाती थी। बाबा, सुन्दर की रक्षा के लिए अपने प्राण दे सकता था, पर उसे राज्य नहीं दिला सकता था। सुन्दर को भी राज्य की चाह न थी। चूँकि आठ वर्ष वह अन्तःपुर में कैद था, उसे बाहर की दुनियाँ का कोई ज्ञान न था। यदि उसे किसी चीज़ का आनन्द था तो वह अपने सहपाठियों के साथ गप्प मारने में ही मिलता था। वे कभी कभी बाबा की अनुमति पर अन्तःपुर में आते और उसके साथ थोड़ी देर खेल-खालकर चले जाते।

एक दिन, शाम को सुन्दर अपने मित्रों के साथ ठंडी हवा के लिए अन्तःपुर की छत पर गया। वहाँ से सारा शहर दिखाई देता था। सूर्य अस्त हो गया था। पर शाम की लाली अभी बाकी थी। उस प्रकाश में, उसे पूर्व में एक बड़ा मकान दिखाई दिया। सुन्दर ने उत्सुकतावश पूछा—"वह मकान किसका है!"

तुरत उन्होंने कहा—"सच कहा जाय तो वह तेरा है। परन्तु महामन्त्री, तेरा

राज्याभिषेक न करके, उसमें रह रहा है। वह राजमहल है। उसमें उसका रोज दरबार लगता है। वहाँ से ही वह शासन कार्य करता है। दो वर्ष पहिले ही तुम्हें वहाँ रखे सिंहासन पर बैठना था। अब बैठने की आशा भी न रही। अब तो इस मन्त्री के कारण तुम्हारे प्राणों पर भी आ पड़ी है। जिसने तुम्हें राज्य न दिया, क्या वह तुम्हें जीवित रहने देगा!"

ये बातें सुन्दर के हृदय में काँटों की तरह चुभीं। वह बड़ा शर्मिन्दा हुआ कि दो वर्ष वह स्त्रियों की तरह हाथ पर हाथ धरे बैठा रहा। संसार की दृष्टि में वह तो अपमानित है ही, ऐसी हालत में प्राण रहें या न रहें तो क्या!

काफ़ी देर तक गप्पें मारने के बाद जब उसके साथी रात को घर जाने लगे, तो सुन्दर ने उनसे कहा—"तुम सब कल सवेरे यहाँ आना। हम घोड़ों पर चार पाँच बाजार घूम आयेंगे।" वे आने के लिए मान गये और अपने घर चले गये।

सुन्दर ने सवेरे उठते ही बाबा से कहा—"बाबा, मैं और मेरे मित्र, जरा
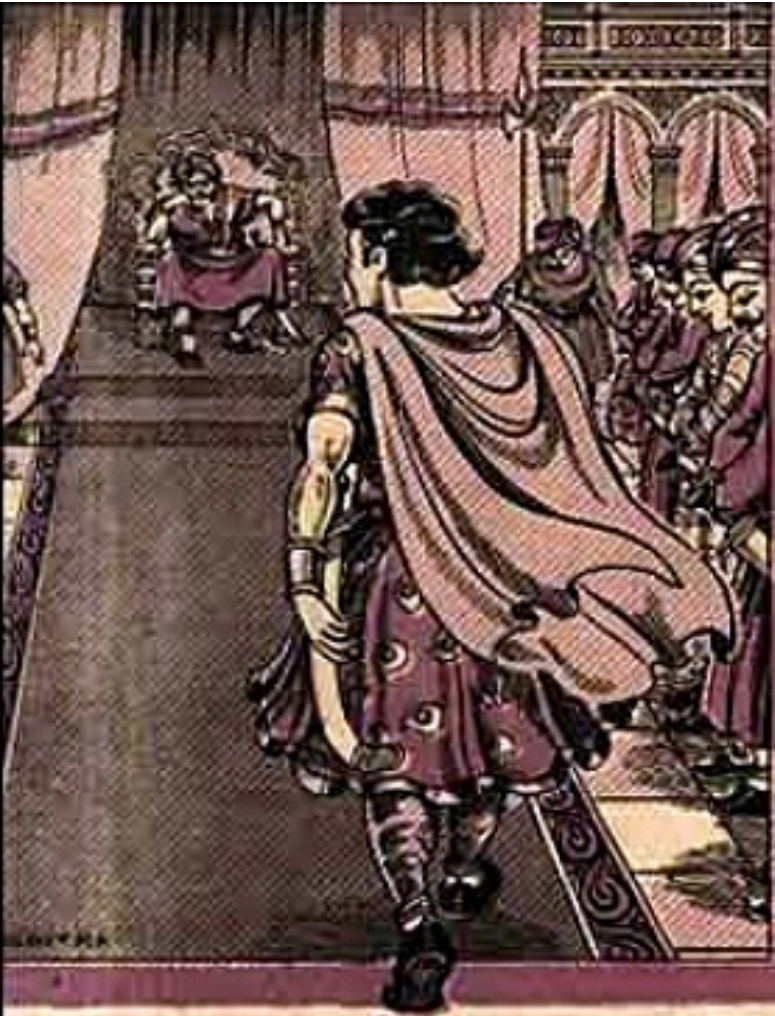
चार पाँच बाजार घूमकर आयेंगे। घोड़े तैयार करवाओ।"

बाबा, युवराज में यह परिवर्तन देखकर खुश हुआ। उसने युवराज के जाने के लिए सब तैयारियाँ करवाईं। सुन्दर के बीस मित्र आये। वह उनके साथ घोड़े पर सवार होकर निकल पड़ा। बाबा एक और घोड़े पर सवार होकर, उसका अंगरक्षक होकर साथ निकला। इस जलूस के आगे पीछे शस्त्रों से सन्नद्ध सैनिक थे।

उसको इस तरह जलूस में जाता देख, सुन्दर ने देखा कि लोग सन्तुष्ट हो उसके प्रति अभिमान प्रदर्शित कर रहे थे। वे हर्षित थे।

वे चार पाँच बाजार घूम घामकर राजमहल में आये, जहाँ दरबार चल रहा था, युवराज को देखते ही दरबारियों ने खड़े होकर नमस्कार किया। मगर सिंहासन पर बैठा महामन्त्री न उठा।

सुन्दर तुरन्त पीछे हटा। अपने घोड़े पर सवार होकर वह अन्तःपुर में चला आया। मित्रों के चले जाने के बाद वह काफ़ी देर तक सोचता रहा। यह तो साफ़ था कि प्रजा उसे चाहती थी, पर वह यह न जानता था कि महामन्त्री के बारे में उनका क्या ख्याल था। भरे दरबार में यदि उसने मेरा अपमान किया है, तो साफ़ है कि प्रजा में उसको कुछ समर्थन प्राप्त है। सुन्दर में नगर की वास्तविक परिस्थितियों को जानने की उत्कट इच्छा हुई। अच्छा हो यदि वह साधारण आदमी के तौर पर युवराज के रुप में नहीं, सारे शहर में घूम फिर सके। अकेला बाहर जाने के लिए बाबा बिल्कुल नहीं मानेगा। वह भी बहुत-से लोगों को लेकर आयेगा। तब बात नहीं बनेगी।

जब बाबा रात को सो रहा होगा, तो सुन्दर ने बाहर जाने की ठानी। पर यह भी सम्भव न था, क्योंकि रात के समय अन्तःपुर के फाटकों पर ताले लगा दिये जाते थे। उसने एक रस्सी की मदद से गली में उतर जाने का निश्चय किया। उस दिन रात को बाबा के सो जाने के बाद, सुन्दर ने सारा महल रस्सी के लिए छाना। आखिर वह अपनी पत्नी के कमरे के पास भी गया, उसकी पत्नी बिस्तर पर सो रही थी। उसको उस कमरे के एक कोने में रस्सी की एक सीढ़ी दिखाई दी।

यह रस्सी की सीढ़ी यहाँ क्यों है? वह एक क्षण तो चकित खड़ा रहा। पर उसके बाद, यह सोच कि उसे वह चीज़ मिल गई थी, जिसे वह खोज रहा था, वह सन्तुष्ट हुआ और आधी रात के समय गली में उतर गया।

नगर शान्त था। कहीं जन संचार न था। कुछ दूर जाने के बाद उसे एक घर में किसी की बातचीत सुनाई दी। वह वहीं बाहर, उसको सुनने के लिए बैठ गया। अन्दर एक ब्राह्मण अपनी पत्नी के साथ बातें कर रहा था।

"क्या करें? जब तक बूढ़े राजा जीवित रहे, तब तक हमें किसी बात की कमी न थी। क्योंकि वे योग्यता के पारखी थे, इसलिए हमें गरीबी नहीं झेलनी पड़ी। जब से यह महामन्त्री सिंहासन पर बैठा है, तब से हमें कष्ट ही कष्ट हैं। फिर सोचा कि युवराज गद्दी पर आयेंगे तो हमारी हालत सुधर जायेगी, मगर अब उसकी भी आशा नहीं है। न वह लड़का राज्य माँगता नज़र आता है, न वह दुष्ट मन्त्री देता ही प्रतीत होता है। आज जब युवराज दरबार में आया तो वह दुष्ट उठा भी नहीं।

अब हमारे लिए यहाँ रहना ठीक नहीं है। चलो कहीं और चलें।" ब्राह्मण ने कहा।

ये बातें सुनते समय सुन्दर को ऐसा लग रहा था, मानों उसके कानों में कोई गरम गरम सीसा घोल रहा हो। "छी, अब मुझे खाली नहीं बैठना चाहिए। मुझे राज्य लेना ही होगा। जब इस ब्राह्मण की ही यह हालत है, तो न मालूम इस नगर में इसके जैसे कितने हैं!" सोचता सोचता सुन्दर वहाँ से गया।

वह जल्दी ही नगर के पूर्वी द्वार पर पहुँचनेवाला था कि रिमझिम होने लगी। सुन्दर पास के विनायक के मन्दिर में घुस गया। थोड़ी देर बाद रिमझिम बदलकर ज़ोर की बारिश हो गई। दो आदमी मन्दिर में आये। कहीं उनकी नज़र उस पर न पड़े इसलिए वह विनायक की मूर्ति के पीछे छुप गया।

वे दो आदमी, द्वार के बाहर के मैदान में भेड़ चरानेवाले थे। वे मन्दिर में आकर इधर उधर की बातें करने लगे। एक ने दूसरे से कहा—"सुना! वह युवराज जो आज तक अन्तःपुर छोड़कर न आता था, आज शेर के मुख में सिर

दे ही बैठा। किस्मतवाला था, जीता जी निकल गया। सुना जाता है कि मन्त्री, जो कोई उसका सिर काटकर लायेगा करोड़ मोहरें देगा।"

"वह कुछ भी करते नहीं हिचकेगा। उसके लिए न दिन, दिन है, न रात, रात है। जनता को वह बड़ा दिक कर रहा है।" दूसरे ने कहा।

इतने में दूर गाड़ी की ध्वनि सुनाई दी।

"लगता है, वह ही आ रहा है। रोज़ इस समय विनोद-विलास के लिए निकल पड़ता है। बारिश कम हो गई है। चलो चलें।" यह कह वे गड़रिये जल्दी जल्दी बाहर चले गये।

सुन्दर जब मूर्ति के पीछे से आया तो उसने भी गाड़ी की ध्वनि सुनी। वह जल्दी ही पास आ गई। जब गाड़ी मन्दिर से कुछ दूर गई तो वह भी उसकी सीढ़ियों पर चढ़कर बैठ गया।

गाड़ी में महामन्त्री और उसके मुख्य मन्त्री थे। वे बातें कर रहे थे।

"हमारे सब लोग कहाँ मर गये थे? वह जब दिन भर बाज़ारों में घूम रहा था अगर कोई कहीं से कोई कटार भी
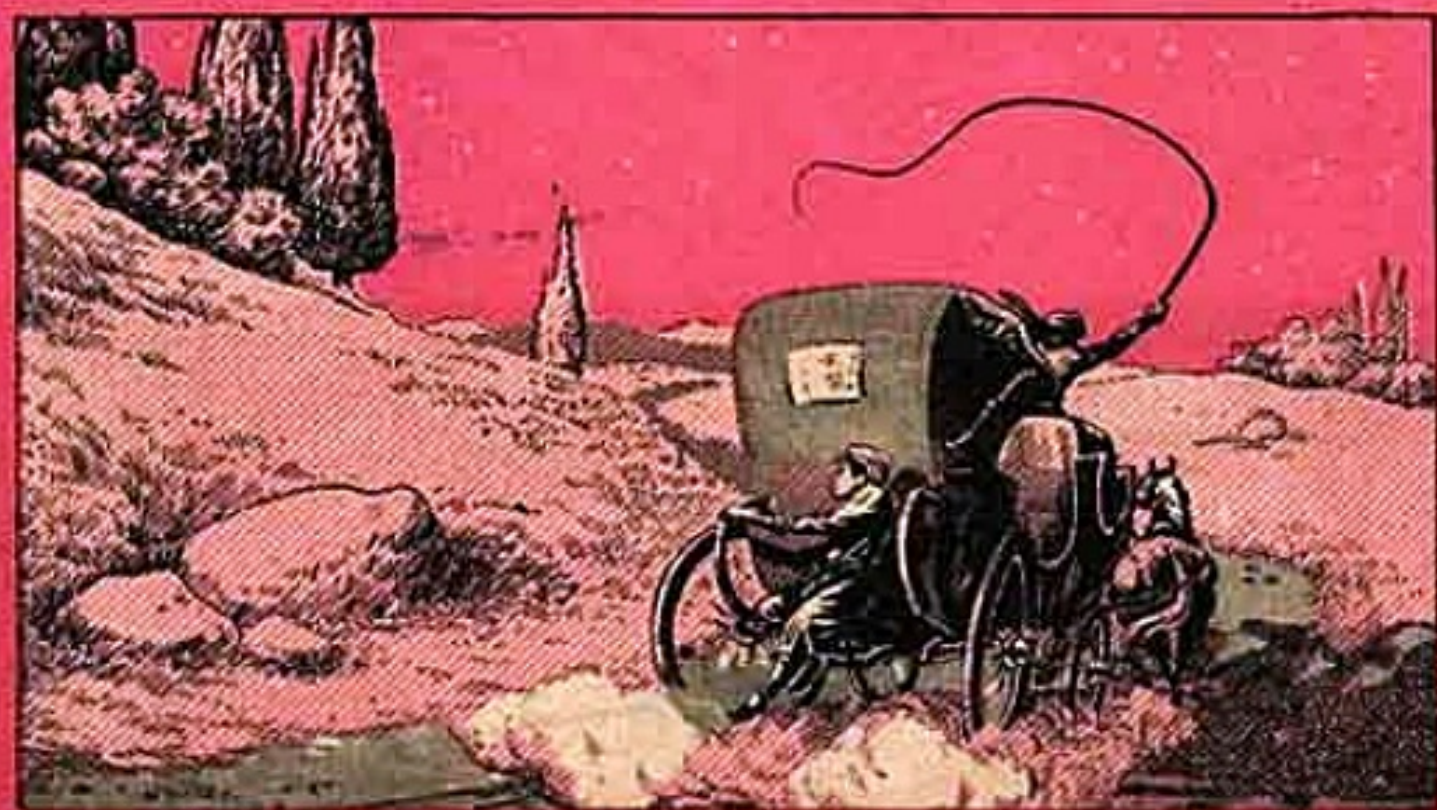
फेंक देता तो हमारा काम खतम हो जाता। उसे जीते जी घर जाने दिया।" महामन्त्री ने कहा। सुन्दर समझ गया कि वह उसके बारे में ही बात कर रहा था।

"महाराज, कोई नहीं जानता था कि युवराज यों बाहर आयेगा। यही नहीं, उसके चारों ओर उसके मित्र थे। उसकी बगल में बाबा था। आगे पीछे सैनिक थे। मगर मेरी एक विनती है। उस बच्चे की जान लेने की क्या ज़रूरत है? दो वर्ष से उसने अपना राज्य नहीं माँगा है। वह माँगेगा भी नहीं। उसको मारने से बहुत-सी हानि होगी। वृद्ध राजा तो लोगों के लिए भगवान-से थे। अगर हमने ऐसे के लड़के की हत्या की तो लोग बल्वा कर देंगे।" उसने महामन्त्री से कहा।

"तुम में जरा भी अक्ल नहीं है। जब तक वह जीवित है, तब तक उसके बारे में कुछ न कुछ आशायें रखते आयेंगे। अगर वह न रहा तो मरी जू की तरह पड़े रहेंगे। उसका सिर काटने की जिम्मेवारी मैं तुम ही पर डालता हूँ। अगर तुमने यह काम नहीं किया, तो तुम्हारा सिर कटवा दिया जायेगा।" महामन्त्री ने कहा।

"क्षमा कीजिये महाराज। मुझे एक सप्ताह का समय दीजिये। मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।" मुख्य मन्त्री ने कहा।

फिर उन्होंने और बातों के बारे में बात की। इनका सम्भाषण सुनने के बाद, उसे बाबा के नियन्त्रण का अर्थ मालूम हुआ। महामन्त्री अत्याचारी था। दुष्ट था। उसने यह भी निश्चय कर लिया कि जितनी जल्दी उससे राज्य ले लिया जायेगा उतना ही अच्छा है।

[अगले अंक में समाप्त]

एक देश में रसार्णव नाम का बड़ा वैद्य रहा करता था। उसका हाथ अच्छा था। अनुभव भी बहुत था। ऐसा कोई रोग न था, जिसकी वह चिकित्सा न कर सके।

उसने एक बार एक बात सोची। "मैंने कई साल, गुरु की सेवा करके, शास्त्र पढ़कर अनुभव पाकर इतनी कीर्ति और धन जमा किया। और यह पारम्परिक वृत्ति मेरा लड़का भी चलाता आ रहा है। परन्तु नाड़ी की परीक्षा करना, और अस्साध्य रोगों की जब चिकित्सा करनी पड़ती है, तो उसके सामने बड़ी समस्या आ जाती है। व्याधि के अनुसार औषधी चिकित्सा करने के लिए थोड़ा बहुत ज्ञान काफ़ी नहीं है। इसके लिए परमात्मा की कृपा आवश्यक है।" यह ख्याल आते ही, रसार्णव ने अपनी वृत्ति अपने लड़के सोमदत्त को सौंप दी। और स्वयं वन में जाकर तपस्या करने लगा।

तीन वर्ष बाद, एक दिन उसको अश्विनी देवता प्रत्यक्ष हुए। और उन्होंने पूछा कि उसकी क्या इच्छा थी। तब रसार्णव ने कहा—"समस्त व्याधियों को ठीक करने के लिए, मुझे एक साधन देकर अनुगृहीत कीजिये।"

अश्विनी देवताओं ने उसे एक बीज दिया। "इसे बोओ। इस वृक्ष के पत्तों के रस का उपयोग किया गया, तो सब रोग ठीक हो जायेंगे। और इसके फल के सेवन से स्वार्गिक सुख मिलेंगे। परन्तु स्वार्थ छोड़कर, परोपकार के लिए ही इसका उपयोग करना होगा।" कहकर वे अदृश्य हो गये।

रसार्णव सन्तुष्ट हुआ। उसने अपने घर के आँगन में देवताओं का दिया हुआ बीज बोया। देखते देखते वह अंकुरित हुआ। और जल्दी पल्लवित भी हो उठा। उसके आखिरी टहनी पर एक लाल फल था।

उस पेड़ के पत्तों से रसार्णव वैद्यक करने लगा, और पहिले से अधिक ख्याति और धन कमाने लगा। उसका लड़का सोमदत्त भी इस पेड़ के पत्तों के बारे में ही जानता था। यदि कोई फल के बारे में पूछता, तो रसार्णव कहा करता कि वह विषैला फल था। सोमदत्त भी यही जानता था।

रसार्णव वृद्ध हुआ। मृत्यु के समय उसने अपने लड़के को बुलाकर कहा—बेटा, तुम इस वृक्ष की महिमा के बारे में तो जानते ही हो, जिसे मैंने इतनी तपस्या करके प्राप्त किया था। वैद्य वृत्ति करके, सबको आरोग्य देकर तुम भी सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करो। हमारे परिवार का नाम रखो।"

तब सोमदत्त ने पूछा—"जब पत्तों का रस ही इतना महिमावाला है, आखिर टहनी पर लगा वह फल कैसे विषैला हो सकता है?"

रसार्णव ने कहा—"वह बताने के लिए ही तुम्हें मैंने अभी बुलाया है। वैद्यक का भेद दूसरे को नहीं जानने देना चाहिए। इसलिए ही मैं सबको यही बताता आ रहा हूँ कि वह विषफल है। सच पूछा जाये तो वह अमृत फल है। जो कोई उसे खायेगा, उसे अमरत्व मिलेगा, वह देवताओं के समान हो जायेगा। इसे भेद के रूप में ही रखना। मेरा समय नज़दीक आ गया है। इसलिए ही मैंने तुम्हें इसका भेद बता दिया।

सोमदत्त ने कहा—"पिताजी, कितना अच्छा मौका है आप क्यों दुखी हैं कि

आपका समय समीप आ गया है। कष्टों के बाद फल पाया है, क्यों नहीं उसे पाकर, स्वयं अमरत्व प्राप्त करते! वर के रूप में, जो फल आपको मिला है, उसे दूसरों को देने से क्या फायदा!"

इस पर पिता ने कहा—"जो मैं कह रहा हूँ, उसे ध्यान से सुनो। जब दी हुई आयु समाप्त हो जाती है, तब सब प्राणियों को यह संसार छोड़कर जाना होता है। मनुष्य का अमरत्व प्राप्त करने का प्रयत्न, वस्तुतः भगवान की आज्ञा का धिकार है। खैर! अब तुम फल के बारे में दो बातें जानो। इस फल का तभी महत्व है जब इसका परोपकार के लिए उपयोग हो। मुझे स्वयं उपयोग नहीं करना चाहिए। दूसरी बात यह कि यदि इस फल को तोड़ लिया गया, तो वृक्ष की महिमा ही जाती रहेगी। जबतक पेड़ पर फल है, तभी तक पत्रों का प्रभाव है। यह तुम याद रखो।"

यह कहकर रसार्णव ने आँखें मूँदलीं। पिता की आज्ञानुसार सोमदत्त ने वृक्ष का रहस्य किसी को न बताया। वैद्यक करता आराम से समय काटने लगा। वह भी औरों से यही कहता रहा कि वृक्ष की आखिरी टहनी पर विष फल था।
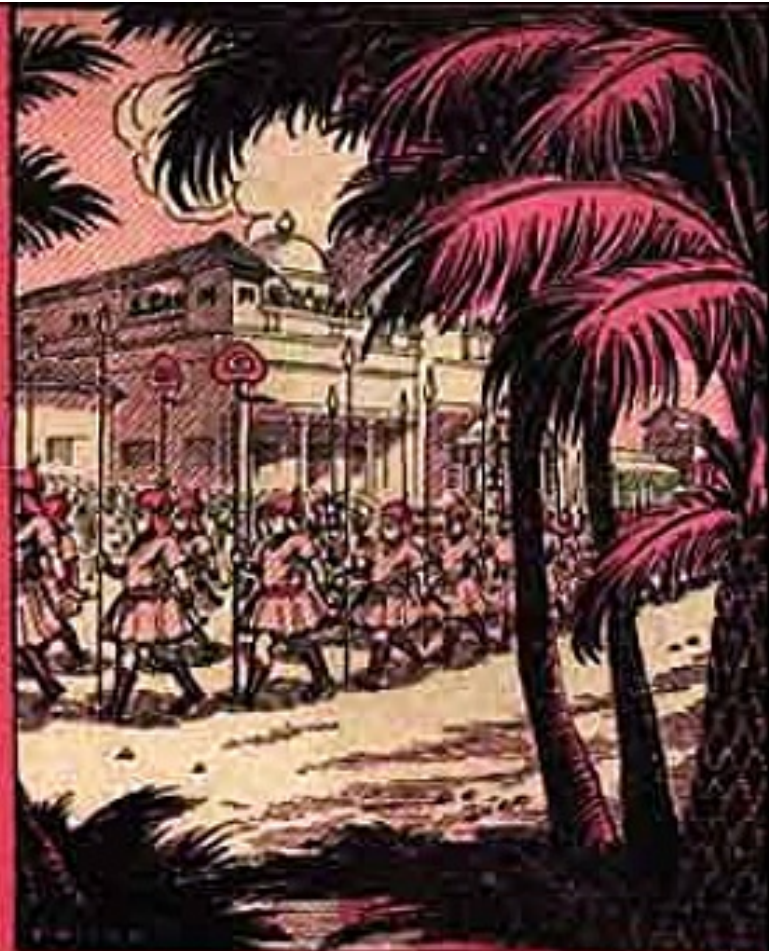
* * *

सोमदत्त की ख्याति देश विदेश में फैली। यह बात काशीपुर के राजा, गुणवर्मा के कानों में भी पड़ी। गुणवर्मा, बहुत दिनों से भयंकर पेट दर्द से पीडित था। बहुत चिकित्सा की गई। परन्तु चिकित्सा का कोई फल नहीं हुआ।

इसलिए सोमदत्त का नाम सुनते ही। गुणवर्मा, मन्त्री और सामन्तों के साथ, उसको देखने निकला। गुणवर्मा की इक

गुणवर्मा ने वैद्य का बड़ा आदर-सत्कार किया, और कहा कि यदि उसने उसका रोग ठीक कर दिया, तो उसे बहुत सा ईनाम देगा। सोमदत्त इस प्रतीक्षा में ही था कि राजा के मुख से यह बात कब निकलती है। उसने कहा—"आपका रोग ठीक करना कोई बड़ी बात नहीं है। अगर मैंने ठीक कर दिया, तो क्या आप अपना वचन रखेंगे ?"

"हम वचन देकर नहीं मुकरे हैं। मुँह माँगा ईनाम देंगे।" राजा का कहना था सोमदत्त ने कहा—"तो मेरा आप अपनी पुत्री के साथ विवाह कीजिए।"

छोटी लड़की, मैथिली, पिता को छोड़कर एक क्षण भी न रह पाती थी। इसलिए उसने पिता के साथ जाने की ज़िद पकड़ी। गुणवर्मा भी उसे न न कर सका।

एक बाग में डेरा डलवाकर, गुणवर्मा ने वैद्य के पास खबर भिजवाई। गुणवर्मा के बारे में सारी जानकारी पहिले ही सोमदत्त को थी। इसलिए यह मालूम होते ही कि राजा आया था। उसे स्वार्थ के भूत ने धर दबोचा। जब कोई बुलाता सोमदत्त, जड़ी बूटियाँ हाथ में लेकर जाया करता, पर अब राजा का दर्शन करने वह खाली हाथ गया।

राजा हक्का बक्का रह गया। उसने सपने में भी न सोचा था कि वैद्य इस प्रकार की इच्छा व्यक्त करेगा। सोमदत्त काला था, अधेड़ भी, फिर बदसूरत। तब गुणवर्मा ने कहा—"वैद्य प्रवीण, हम आपकी इच्छा पूरी नहीं कर सकते, मैं इस दर्द से मर जाऊँगा। अपनी लड़की का जीवन नष्ट न करूँगा।"

इस पर सोमदत्त ने कहा—"राजन्, सालों से आप यह कष्ट उठा रहे हैं। एक घंटे में, मैं आपका रोग दूर कर दूँगा।

जैसे कोई जादू किया हो। आप सोच, समझने के बाद खबर भिजवाइये।" वह यह कहकर चला गया।

वैद्य के चले जाने के बाद राजकुमारी ने पिता के पास आकर कहा—"पिता जी मैं आपका कष्ट नहीं देख सकती। आप इसे खबर भिजवाइये कि मैं इससे ही शादी करूँगी। परन्तु एक शर्त रखिये। यदि उसने एक घंटे में आपकी बीमारी न ठीक की, तो हमारे किले की ड्योढ़ी पर उसे अपना सिर चढ़ाना होगा।"

उस दिन शाम को मन्त्री वैद्य के घर गया। जो कुछ राजकुमारी ने कहा था उसने उसे उसके सामने दुहरा दिया। सब सुन सोमदत्त ने कहा—"मैंने तो यूँ ही घंटे की अवधि माँगी थी। वैसे इतने समय की जरूरत नहीं है। राजा की यदि आज्ञा हो तो दो मिनट में ही मैं बीमारी ठीक कर दूँगा। अगर मैंने ऐसा न किया, तो खुशी खुशी अपना सिर दे दूँगा।"

बगल में ही सोमदत्त की पत्नी सुवर्ण ने लुके छुपे यह सारी बात सुनी। जब राजा की लड़की उनकी पत्नी होने जा रही है, तो ये क्या मेरी सूरत देखेंगे! मेरी क्या

हालत होगी! यह कितनी भयंकर बात है। उसके मन में तूफ़ान उठने लगा। मगर सोमदत्त होने वाले विवाह के बारे में खुशी से फूला न समा रहा था। उसने पत्नी के दुख की परवाह न की।

सवेरे सवेरे सोमदत्त उठा। पत्ते तोड़कर वह राजा के पास गया। उसने राजा को औषधी दी। जाने क्यों राजा के रोग का ठीक होना तो अलग उसका दर्द और भी बढ़ गया। वैद्य पसीना पसीना हो गया।

"वैद्य, सिर देने के लिए तैयार हो जाओ।" मन्त्री ने कहा।

"स्वामी, जल्दी में कोई गल्ती कर बैठा हूँ। कोई और जड़ी ले आया होऊँगा। आदेश हो, तो अभी घर जाकर, ठीक दवा ले आऊँगा।" सोमदत्त ने सोचते हुए कहा।

राजा ने आज्ञा दे दी थी। इसलिये मन्त्री ने भी सोमदत्त को जाने के लिए कहा। कहीं ऐसा न हो कि वह फरार हो जाये, उसने दो सिपाहियों को भी उसके साथ साथ भेजा।

घर आते ही सोमदत्त ने आँगन में पेड़ की आखिरी टहनी पर फल देखा। वहाँ फल न दिखाई दिया। "सब बेकार है। वह सोचता, घर के अन्दर आ रहा था कि उसके पैर में एक कागज लगा।" उसमें लिखा था। मैं आपके मार्ग में नहीं आना चाहती। इसलिये पेड़ पर लगा विषफल तोड़कर, आत्महत्या कर रही हूँ।

घबराहट में सोमदत्त पत्नी की खोज करने लगा। बहुत खोजा। पर वह न दिखाई दी।

* * *

राजा को इतना कष्ट हो रहा था कि वह बोल ही न पा रहा था। मन्त्री ने सोमदत्त को राजा के सामने रखा। और सैनिकों को संकेत किया।

तब आकाशवाणी हुई। सब को उस ओर देख आश्चर्य हुआ। एक देवी ने प्रत्यक्ष होकर कहा।

"मेरे पति की गल्ती माफ़ कीजिये।" कहते हुए उसने अपनी सारी कहानी सुनाई। फिर उसने एक जड़ी नीचे फेंक दी और कहा कि राजा उसका सेवन करें। उसे खाते ही राजा का रोग जाता रहा। और वह सुख से रहने लगा। लज्जित और खिन्न हो सोमदत्त घर की ओर चला।

एक दिन नारद महामुनि वाल्मीकी महामुनि के आश्रम में आये। आश्रम तमसा नदी के किनारे था। वाल्मीकी ने उनकी शास्त्रोक्त रीति से पूजा करके पूछा—"महात्मा. क्या इस युग में, इस लोक में सकल सद्गुण सम्पन्न, महापराक्रमी पुरुष कोई है!"

तब नारद ने वाल्मीकी को राम की कथा विस्तार से सुनाई। नारद महामुनि विदा लेकर गये थे कि दुपहर के स्नान का समय भी हो गया। वाल्मीकी महामुनि अपने शिष्य भारद्वाज को लेकर तमसा नदी के तट पर गये।

वहाँ उन्हें क्रौन्च पक्षियों का एक जोड़ा दिखाई दिया, पक्षी परस्पर प्रेम में मस्त हो गाते हुए जंगल में कुछ दूरी पर आनन्द कर रहे थे।

वे बल्कल वस्त्र पहिनकर, नदी के पानी में उतर रहे थे। वे उन पक्षियों के आनन्द को देख ही रहे थे कि किसी शिकारी ने उनमें से नर पक्षी को मार दिया। वह नीचे गिरकर छटपटाने लगा। मादा पक्षी रोने चिल्लाने लगी।

वाल्मीकी के हृदय में पक्षी के प्रति दया और शिकारी के प्रति क्रोध उमड़ आया। उसने तुरत शिकारी को सम्बोधित करके यह कहा—

"मानिषाद प्रतिष्ठान्त्व
मगम श्शाश्वती स्समाः
यत्कौन्च मिथुनादेक
मवधीः काममोहितम्"

[ओ निर्दयी, प्रेम में निमग्न क्रौन्च पक्षियों के दम्पति में से एक को मार कर तुम अधिक दिन तक सुख से न रह सकोगे।]

अनायास वाल्मीकी के मुख से यह श्लोक के रूप में निकला। इस श्लोक में चार पक्तियाँ और हर पंक्ति में आठ आठ अक्षर थे।

अपने मुख से इस प्रकार श्लोक निकलता देख, वाल्मीकी को आश्चर्य हुआ। उनके शिष्य भारद्वाज के सन्तोष की तो सीमा ही न थी। उसने गुरु के मुख से निकलने वाले शब्दों को सुना और उन्हें कंठस्थ कर लिया।

इसके बाद वाल्मीकी नहा-धोकर आश्रम गये। भारद्वाज जल कलश लेकर उनके पीछे चला। आश्रम में भी वाल्मीकी अपने उस श्लोक पर सोचते ही रहे।

इतने में ब्रह्मा उनको देखने आये। वाल्मीकी उठे। ब्रह्मा को साष्टाङ्ग करके अर्घ्य आदि देकर मौन खड़े हो गये। तब ब्रह्मा ने वाल्मीकी को बैठने के लिए कहा—"वाल्मीकी, मेरी कृपा से ही तुम्हें कविता मिली है। तुमने इससे पहले ही राम की कथा सुनी है। उस कथा को महाकाव्य के रूप में रचो। वह जब तक भूमि है, तब तक शाश्वत रहेगा। वह जब तक है, तब तक तुम उत्तम लोकों में विहार कर सकोगे।" यह कहकर ब्रह्मा अदृश्य हो गया।

इस प्रकार ब्रह्मा के प्रोत्साहन पर वाल्मीकी ने रामायण की कथा, जो श्लोक उनके मुख से अनायास निकल पड़े थे उसी तरह के श्लोकों से आनन्द

दायक शैली में लिखी। हम भी इस कथा को पढ़कर आनन्दित हों।

* * *

वैवस्वत सूर्य का लड़का था और ईक्ष्वाकु वैवस्वत का लड़का था। वैवस्वत सातवें मनु के रूप में अमर है। उसके बाद की सन्तति ईक्ष्वाकु सूर्य वंशज के रूप में प्रसिद्ध हुई। इनमें सगर भी एक था। यह सगर छः चक्रवर्तियों में एक है। गंगा को जो स्वर्ग से भूमि पर लाया था, वह भगीरथ, इस सगर का ही पोता था।

सूर्य वंश के राजाओं ने अयोध्या नगर को राजधानी बनाकर, कोसल देश का परिपालन किया था। अयोध्या को वैवस्वत ने स्वयं बनाया था। वह बारह योजन लम्बा और तीन योजन चौड़ा सुन्दर नगर था। उसके चारों ओर प्राकार था, बड़ी बड़ी खाइयाँ थीं। नगर में लक्ष्मी का निवास था। वहाँ की प्रजा में शिल्पी, कलाकार, पंडित, युद्ध-विद्या में कुशल, वेद वेदांगों में पारंगत, लोग थे। नगर में हाथी, घोड़े, गौ, ऊँठ और गधे भी खूब थे। प्रजा का जीवन सुखमय था।
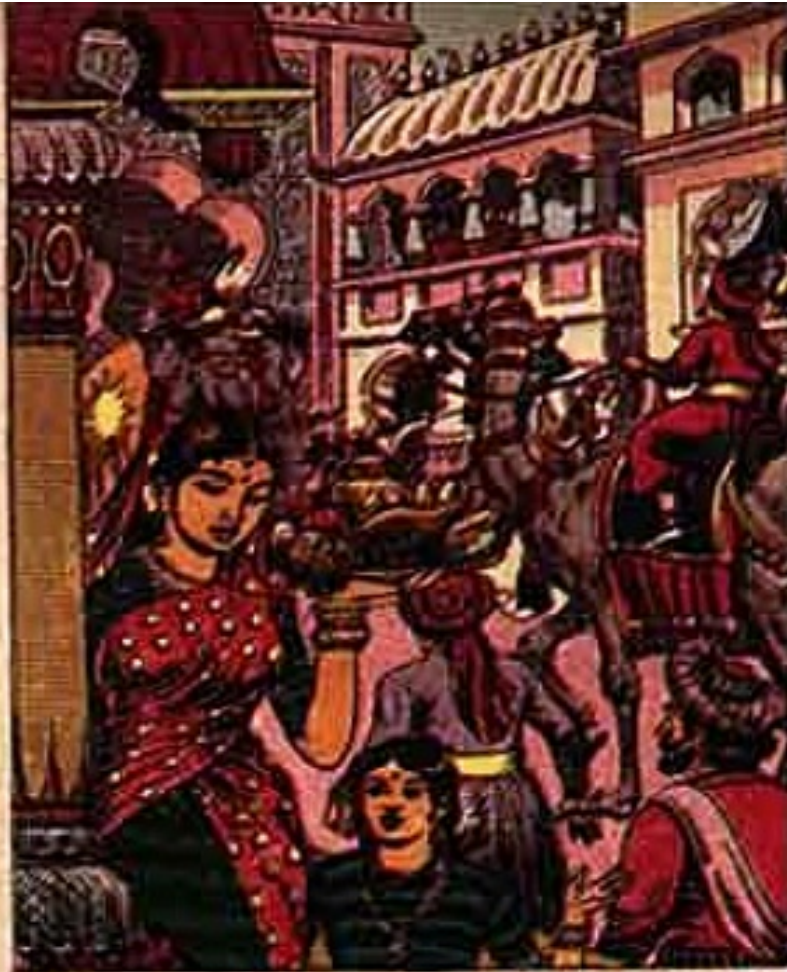
शत्रुओं के लिए दुर्भेद्य अयोध्या का सूर्य वंश का राजा दशरथ परिपालन कर रहा था। दशरथ ऐश्वर्य और वैभव में इन्द्र और कुबेर से कम न था। बड़ा पराक्रमी था। न्यायपूर्वक शासन करता था।

दृष्टि, जयन्त, विजय, सिद्धार्थ, अर्थ साधक, अशोक, मन्त्रपाल और समन्त्र नाम के दशरथ के आठ मन्त्री थे। वशिष्ट महाऋषि उनका कुल गुरु था। वशिष्ट और वामदेव उनके पुरोहित थे। गुप्तचरों से मालूम किया जाता कि देश के किस भाग में क्या हो रहा था। इस तरह आठ

मन्त्रियों की सहायता से दशरथ राज्य का पालन कर रहा था।

दशरथ को कोई कमी नहीं थी। पर सन्तान की कमी उसे हमेशा सताया करती। उसने अश्वमेध यज्ञ करके और उस तरह देवताओं को सन्तुष्ट करके सन्तान प्राप्त करने की सोची। उसने अपने मन्त्रियों में मुख्य सुमन्त्र के द्वारा वशिष्ट, वामदेव आदि सुयज्ञ, जाबाली आदि गुरु और अन्य ब्राह्मण पुंगवों को बुलवाया। उसने उनकी सलाह माँगी। उन्होंने अश्वमेध यज्ञ के प्रस्ताव का समर्थन किया।

उन सब के जाने के बाद, दशरथ से सुमन्त्र ने कहा—"महाराज, आप के अश्वमेध यज्ञ का निर्वहण करने के लिए ऋष्यश्रृंग से बढ़कर कोई नहीं है। मैं उसकी बात सुनाता हूँ। सुनिये।" कहते हुए उसने यह कहानी सुनायी।

अंग देश के राजा रोमपाद, दशरथ के मित्रों में एक था। क्योंकि रोमपाद का शासन अन्यायपूर्ण था, इसलिए अंग देश में भयंकर अकाल आया। रोमपाद अकाल देखकर चिन्तित हो उठा। उसने ब्राह्मणों को बुलाकर उनसे अकाल दूर करने का उपाय पूछा।

"महाराज, विभंडक मुनि का ऋष्यशृंग नाम का लड़का है। जहाँ वह रहता है, वहाँ अकाल नहीं पड़ता। जैसे भी हो उसे अंग देश बुलवाइये। उसका सब तरह से आदर सत्कार कीजिये। अपनी लड़की शान्ति का उससे विवाह की जाए। यदि आपने उसको अंग देश में ही रखा, तो देश में दुर्भिक्ष न आयेगा।" ब्राह्मणों ने कहा।

तब रोमपाद ने अपने पुरोहित और मन्त्रियों को बुलाकर कहा—"तुम जाकर ऋष्यशृंग महामुनि को जैसे भी हो यहाँ ले आओ।"

यह सुन पुरोहित और मन्त्री डरे, क्योंकि ऋष्यशृंग किसी के बुलाने पर, आसानी से जंगल छोड़कर, अपनी तपस्या छोड़कर आनेवाला व्यक्ति न था। गुस्से में वह शाप भी दे सकता था। उसको बुलाने के लिए कोई न कोई अच्छा उपाय करना आवश्यक था। पुरोहित ने रोमपाद को यह उपाय बताया।

"महाराज! बचपन से ही ऋष्यशृंग जंगलों में ही वेदाध्ययन करता, तपस्या में मग्न हो जीवन बिता रहा है। वह यह भी नहीं जानता कि स्त्री किसे कहते हैं। यदि

हमने कुछ वेश्याओं को अलंकृत करके, श्रृंगार करके भेजा, तो वे आसानी से ऋश्यश्रृंग को आकर्षित कर सकेंगे! और अपने साथ ला सकेंगे!

रोमपाद यह करने के लिए मान गया। उसने कुछ सुन्दर वेश्याओं का सज़ा सवाँर कर ऋश्यश्रृंग के आश्रम में भेजा। वे आश्रम के बाहर इस प्रतीक्षा में रहीं कि ऋश्यश्रृंग कब दिखाई देता है।

वह ऋश्यश्रृंग हमेशा पिता की सेवा शुश्रुषा ही करता रहता था, कभी वह आश्रम से बाहर न गया था।

पर न जाने क्यों वह एक दिन आश्रम से बाहर आया। तुरत वेश्यायें गातीं उसके पास आईं। उनकी सुन्दर आकृतियाँ, अलंकरण, आकर्षक कंठ, गीत सुन, ऋश्यश्रृंग चकित रह गया और उनकी ओर आकर्षित हुआ। पर वह न जानता था कि वे स्त्रियाँ थीं।

वेश्याओं ने उसके पास आकर पूछा—"ओ, ब्राह्मण तुम कौन हो! क्यों जंगलों में अकेले फिर रहे हो!"

"मैं विभंडक महामुनि का लड़का हूँ। यह हमारा आश्रम है। यदि तुम आश्रम में आओगे, तो तुम्हारा विधि के अनुसार आतिथ्य करूँगा।" वे उसके साथ आश्रम में गईं। उसके दिये हुए कन्द, फल, मूलों को उन्होंने खाया।

यदि वे वहाँ अधिक देर तक रहीं, तो वेश्याओं को डर था विभंडक उनको शाप दे सकता था। इसलिए जाते हुए उन्होंने अपने साथ लाई हुई खाने की चीज़ों को देते हुए उससे कहा—"ये ही हमारे फल हैं। इनको भी खाकर देखो। अब हमें जाना है। तपस्या करनी है।" वे ऋश्यश्रृंग का आलिंगन करके आश्रम से बाहर चली गईं।
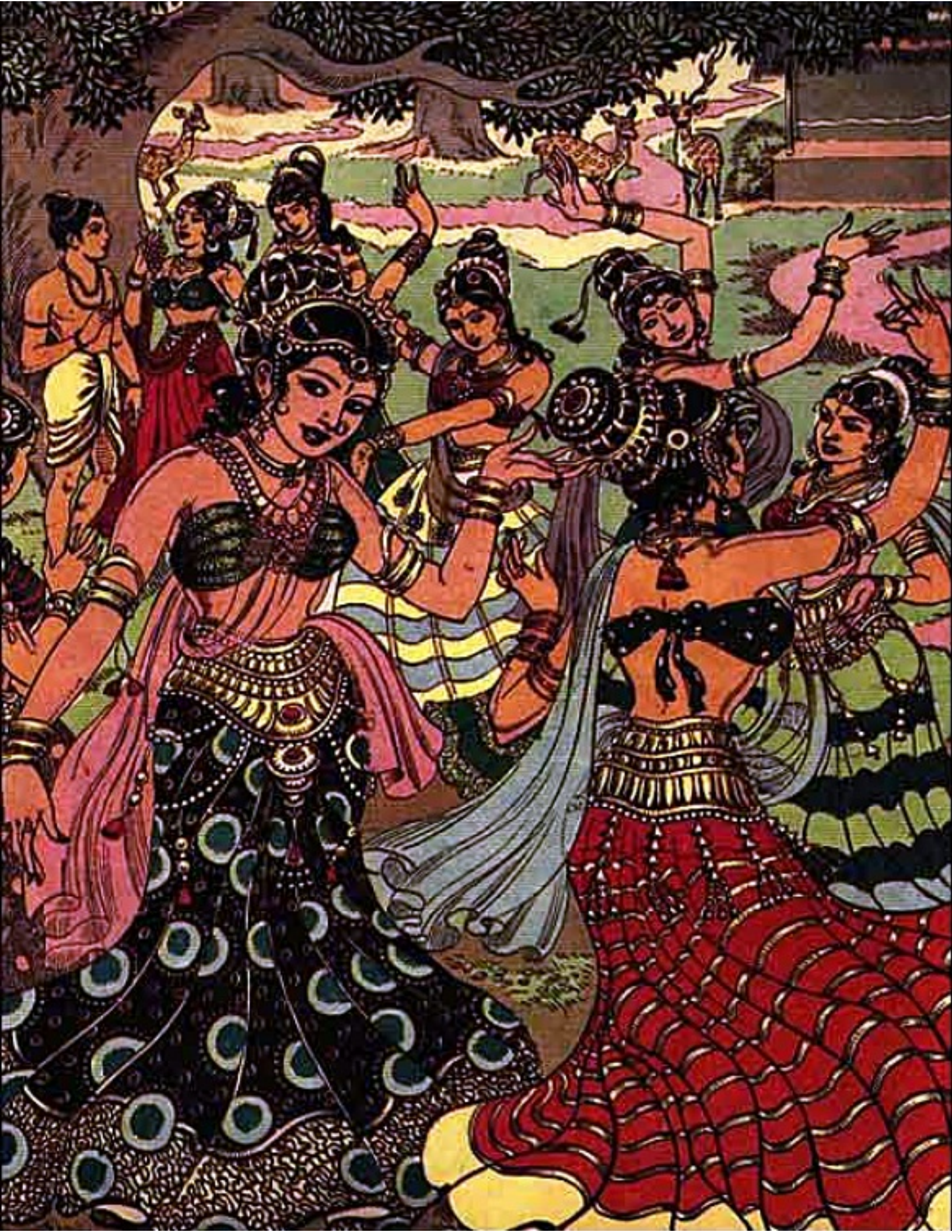
उनको दी हुई खाने की चीज़ों को खाकर, ऋष्यशृंग ने सोचा कि वे फल ही थे। परन्तु वे उन फलों से, जिन्हें वह खाता था, अधिक स्वादिष्ट थे। यही नहीं जिन्होंने उसका आतिथ्य स्वीकार किया था, वे साधारण मुनियों से अधिक आकर्षक थे। सुन्दर थे। वह उन्हें भूल न सका। उस दिन वह व्याकुल-सा रहा। अगले दिन भी यह सोचकर कि कल जहाँ वे दिखाई दिये थे, दिखाई देंगे, वह गया।

उसे देखते ही वेश्याओं ने सोचा कि उनका काम हो गया था। उन्होंने उससे कहा—"तुम भी हमारे आश्रम में आओ। वहाँ, हम तुम्हारा खूब आतिथ्य करेंगे।" ऋष्यशृंग आनन्दित हो उनके साथ चला गया।

ऋष्यशृंग के साथ अंग देश में वर्षा भी आई। रोमपाद ऋष्यशृंग से मिलने आया। उसने उसको साष्टाङ्ग नमस्कार किया, उसने उसको इस तरह बुलाने के लिए क्षमा भी माँगी। फिर अपनी लड़की शान्ति का उससे विधिपूर्वक विवाह किया। ऋष्यशृंग शान्ति के साथ, समस्त सुखों का अनुभव करता, अंग देश में ही रह गया।

सुमन्त्र की सुनाई हुई कहानी सुनकर दशरथ बड़ा सन्तुष्ट हुआ। वशिष्ट की अनुमति लेकर, वह अपनी पत्नियों और मन्त्रियों को साथ लेकर अंग देश गया। रोमपाद ने दशरथ का खूब आतिथ्य किया। अपने घर उसको एक सप्ताह तक रखा। फिर अपने जमाई ऋष्यशृंग और अपनी लड़की शान्ति को दशरथ के साथ भेजने के लिए मान गया। तुरत दशरथ के दूत, अयोध्या को सजाने के लिए उनसे पहिले ही निकल गये। (अभी है)

पुरस्कार

पूर्णिमा की चान्दनी थी। बाबा भोजन के बाद आराम कुर्सी में बैठ गया, बच्चे उससे पहिले ही आ गये थे। बाबा ने सुंघनी निकाली और नाक में डालते हुए यह श्लोक पढ़ा।

"अज्ञा एव जनाः प्रायो
वञ्च्यन्ते वंचकै नृभिः
प्राज्ञा नजातु वंच्यन्ते
सुमति श्चोल राजिव"

इसका अर्थ क्या है बाबा? बाबा क्या यह कोई और कहानी है? कहानी, तो सुनाओ।" बच्चों ने शोर किया।

"अरे कहानी सुनाने के लिए ही तो मैंने श्लोक सुनाया था? पहिले यह क्यों नहीं पूछते कि श्लोक का क्या अर्थ है? साधारणतया संसार में कितने ही ठग हैं। वे किसको ठगते हैं? विचारे नादानों को? क्यों? परन्तु कभी कभी अक्लमन्द इन ठगों को ही ठगते रहते हैं। कभी सुमति नाम के चोल राजा ने इसी तरह ठगा था, यह इस श्लोक का अर्थ है।" बाबा ने कहा।

"सुमति ने किसको ठगा था, बाबा? ठग कौन था, बाबा?" बच्चों ने एक एक प्रश्न किया।

"मुझे सुनाने दो।" कहते हुए बाबा ने यह कहानी सुनानी शुरु की।

सुमति नाम का राजा चोल देश का परिपालन किया करता था। सुमति का अर्थ ही बड़ा बुद्धिमान है न। वह राजा सचमुच बड़ा बुद्धिमान था। बड़ा वीर था। बड़ा विद्वान था। अगर कोई किसी विद्या में प्रवीण होता, तो उसको पुरस्कार देता। इसलिए उसके पास बहुत से विद्वान, चतुर व्यक्ति आते और अपना पांडित्य और चातुर्य दिखाते।

जानते हो, एक बार क्या हुआ ! एक ने आकर राजा को नमस्कार किया। राजा ने पूछा—"तुम किस विद्या में प्रवीण हो ?"

"महाराज, मैं बड़ा वैज्ञानिक हूँ, मैं ऐसी विद्या जानता हूँ कि किसी भी धातु से सोना बना सकता हूँ। यह हमारी पारम्परिक विद्या है।" उसने कहा।

इस तरह के ठग अपने को वैज्ञानिक बताकर, लोगों को ठगते और चान्दी आदि चुराकर भाग जाते।

राजा क्योंकि अक्लमन्द था, इसलिए वह यह जान गया। उसने उसका अपमान करने का भी निश्चय किया। इसलिए उसने नौकर को बुलाकर कान में कुछ कहा। उस नौकर ने क्या किया ? उसने एक लोहे का सन्दूक लाकर ठग को दिया।

ठग ने सोचा कि उसकी चाल चल गई थी। हो सकता है कि उसने सोचा कि राजा उस सन्दूक में सोना चान्दी, हीरे मोती रखकर उसे दे रहा था। जब उसने खुशी खुशी लोहे का सन्दूक खोला, तो वह खाली था।

उसने राजा से कहा—"यह सोच कि आप कोई बड़ा-सा पुरस्कार मुझे देंगे, मैं इतनी दूर से पहाड़-सी आस लेकर आया, और आपने मुझे यह खाली सन्दूक दिया। क्या मेरा इस तरह अपमान करना ठीक है !

राजा ने कहा—"यह भी क्या बात है, तुम कह रहे हो कि सोना बनाना तुम्हारी पारम्परिक वृत्ति है। कहते थे कि किसी भी धातु का सोना बना सकते हो। तब मैं तुम्हें क्या दे सकता हूँ ? तुम सोना तैय्यार करके इसमें रख सकोगे, इसलिए मैंने यह सन्दूक दिया। इसमें गलती क्या है ?" सब के सब ठठ्ठा मारके हँसे।

अन्धकार का भूत

हिमालय में एक जगह एक आदिम जाति रहा करती थी। उस जाति के लोग इतने असभ्य थे कि न वे आग बनाना जानते थे, न उसके उपयोग ही, वे सूर्यास्त के समय सो जाते और सूर्योदय के समय उठ अपने काम शुरु कर देते। इसलिए वे अन्धकार किसे कहते हैं, नहीं जानते थे।

इन असभ्यों की जगह के पास एक बड़ी गुफ़ा थी। उन असभ्यों के पूर्वज कभी उस गुफ़ा में गये थे पर वे वापिस न आये। गुफ़ा के दल-दल में डूबकर या, अन्धकार में सिर के ऊपर के चट्टानों से टकराकर वे गुफ़ा में ही मर गये।

परन्तु ये असभ्य यह सोचा करते कि उनके पूर्वज इस गुफ़ा में विद्यमान थे और इसलिए उसे पवित्र मानते। पर उस गुफ़ा में अन्धकार देखकर, उन्होंने समझा कि वह कोई भूत था। उसे जैसे भी हो हटाने के लिए उन्होंने हर प्रयत्न किये।

"यदि हम सब ने मिलकर गुफ़ा के सामने साष्टान्ग किया और भूत से चले जाने की प्रार्थना की, तो वह चला जायेगा।" एक ने कहा। सब ने मिलकर गुफ़ा के सामने सालों साष्टान्ग किया। परन्तु गुफ़ा में से अन्धकार न गया।

इतने में एक और ने कहा—"जब तक शस्त्रों से इसका निर्मूलन नहीं कर देंगे, तब तक यह जायेगा नहीं।" असभ्य इसके लिए ही मान गये। उन्होंने गुफ़ा में बाण, लाठी, पत्थर फेंके। परन्तु अन्धकार पहिले की तरह ही रहा।

फिर एक ने कहा—"चलो, व्रत उपवास करें। इस तरह ही यह भूत चला जायेगा।" इस सलाह पर उस जाति ने

स्वामी रामतीर्थ

उपवास किये। इससे भी कोई फल न हुआ। अन्धकार का भूत गुफा में ही अड्डा बनाये हुआ था।

किसी और ने बताया कि दान करने से भूत चला जायेगा। उन असभ्यों ने जितना कुछ उनके पास था, वह सब दान में दे दिया। प्रार्थना, पराक्रम, उपवास का जो परिणाम हुआ था, वह इस उपवास का भी हुआ।

आखिर उस जगह एक ज्ञानी आया। आदिम जातिवालों ने उससे अपनी समस्या और उसको हल करने के प्रयत्नों के बारे में बताया।

"मैं इस गुफा में रहनेवाले भूत को भगा दूँगा। जो मैं कहूँ, करो। एक बड़े लम्बे बाँस को लाओ, उसके सिरे पर सूखी घास लपेटो, उस पर कुछ चरबी लगाओ।"

जैसे उन्होंने कहा वैसा उन्होंने किया। फिर ज्ञानी ने चकमक पत्थर से आग पैदा की और उसे बाँस के सिरे में बंधी घास को छुआ दी। यदि इस बाँस को लेकर गुफा में प्रवेश किया गया, तो भूत चला जायेगा, उसने कहा।

बहुत से असभ्यों ने इस बात पर विश्वास न किया। "जाने यह आदमी कहाँ से आया है? भला यह क्या जानता है! हमने इस भूत से प्रार्थना की, इसको मारने की कोशिश की। इसके लिए उपवास किये, दान दिये। जो भूत इतना सब करने पर न गया, क्या इस बाँस को देखते ही चला जायेगा?"

परन्तु कुछ लोग उस गुफा में गये। क्योंकि उनके हाथों में मशाल थी, इसलिए उनको सारी गुफा साफ़ साफ़ दिखाई दी। अन्धकार का भूत कहीं न दिखाई दिया।

बृहदीश्वरालय

एक समय में तंजौर दाक्षिणात्य संस्कृति का मुख्य केन्द्र था। १०-१४ शताब्दियों में यह चोल राजाओं की राजधानी थी। उनमें प्रसिद्ध राज राजा चोल ने तंजौर में बृहदीश्वरालय का निर्माण करवाया। इनका समय ग्यारहवीं सदी समझा जाता है। पाश्चात्य लोगों का कहना है कि भारत के मन्दिरों में यह सब से बड़ा है, इस आलय में एक बड़ा लिंग है। और आलय के सामने एक प्रस्तर निर्मित नन्दी की मूर्ति है। (हमारे देश में इससे बड़ा नन्दी केवल लेपाक्षी मन्दिर में ही है।) आलय के मुख्य द्वार की ऊँचाई २१६ फीट है। यह बहुत दूरी तक दिखाई देता है। कहा जाता है कि मुख्य द्वार के शिखर पर अस्सी टन का पत्थर है। इतने बड़े पत्थर को, उतने ऊपर चढ़ाना सम्भव नहीं है। इसलिए चार मील दूरी पर से इसको ऊपर चढ़ाने के लिए रास्ता बनवाया गया।

आलय में केवल शिव सम्बन्धी मूर्तियाँ ही नहीं हैं, परन्तु वैष्णव और बौद्ध मत सम्बन्धी शिल्प भी दृष्टिगोचर होता है। मन्दिर के प्राँगण के दीवारों पर हाल में सुन्दर चित्र भी देखे गये। ये भी चोल राजा के समय के हैं। इन चित्रों के चित्रकार भारतीय ही हैं।

अन्तिम पृष्ठ

जब युधिष्ठिर का कहीं पता न लगा तो अर्जुन ने भीम के पास आकर पूछा—"भाई कहाँ है ?" भीम ने कहा कि वह शिविर गया होगा। उसे कर्ण ने बुरी तरह घायल कर दिया है।"

कृष्ण और अर्जुन रथ में शिविर गये। युधिष्ठिर अकेले बिस्तर पर लेटा हुआ था। उसने उन्हें देखकर सन्तुष्ट होकर पूछा—"तुम उस कर्ण को मार कर आये हो न ? उसने मुझ पर आक्रमण किया और अपशब्दों का उपयोग किया। मेरा अपमान किया। अर्जुन मुझे तुम यह तो बताओ कि तुमने उस कर्ण को किस तरह मारा।"

"जब तुम दिखाई न दिये, तो हम घबराकर तुम्हें देखने आये हैं। अभी तक मेरा कर्ण से मुकाबला नहीं हुआ है।" अर्जुन ने उत्तर दिया। युधिष्ठिर को गुस्सा आ गया। यदि तुम कह देते कि "मैं कर्ण को न मार सकूँगा, तो बात इतनी दूर न आती। तुम्हारे पास उस गाण्डीव की भी क्या ज़रूरत है ? कृष्ण को या किसी और को दे दो।" युधिष्ठिर ने कहा। अर्जुन ने प्रतिज्ञा कर रखी थी कि यदि किसी ने गाण्डीव को किसी और को देने के लिए कहा तो वह उसके प्राण ले लेगा। इसलिए तलवार लेकर युधिष्ठिर को उसने मरना चाहा।

कृष्ण ने उसे ऐसा करने से रोका। "फिर मेरी प्रतिज्ञा के बारे में क्या कहते हो ?" अर्जुन ने पूछा। "मनुष्यों के लिए अपमान मृत्यु से भी अधिक है। इसलिए तुम युधिष्ठिर को बुरा भला कहो।" कृष्ण ने सलाह दी। फिर अर्जुन ने युधिष्ठिर को जुआखोर कहा। यह भी कहा कि उनके सब कष्टों का वही कारण था। भाई की निन्दा करने से उसका मन ही क्षुब्ध हो उठा। उसने उसी तलवार से आत्महत्या करनी चाही। कृष्ण ने बीच में आकर कहा—"स्वाभिमानियों के लिए आत्मस्तुति आत्महत्या के समान है। इसलिए तुम अपनी प्रशंसा स्वयं करो। तुम्हारी चिन्ता जाती रहेगी।" अर्जुन अपनी प्रशंसा स्वयं करने लगा। इस तरह युधिष्ठिर और अर्जुन के बीच सन्धि हो गई।

फ़ोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता

अगस्त १९६१ :: पारितोषिक १०)

कृपया परिचयोक्तियाँ कार्ड पर ही भेजें।

ऊपर के फ़ोटो के लिए उपयुक्त परिचयोक्तियाँ चाहिए। परिचयोक्तियाँ दो-तीन शब्द की हों और परस्पर संबन्धित हों। परिचयोक्तियाँ पूरे नाम और पते के साथ कार्ड पर ही लिख कर निम्नलिखित पते पर ता. ७ जून '६१ के अन्दर भेजनी चाहिए।

फ़ोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता,
चन्दामामा प्रकाशन,
वड़पलनी, मद्रास-२६

जून - प्रतियोगिता - फल

जून के फ़ोटो के लिए निम्नलिखित परिचयोक्तियाँ चुनी गई हैं। इनके प्रेषक को १० रु. का पुरस्कार मिलेगा।

पहिला फ़ोटो : **हमें है सिलगी प्यास!**

दूसरा फ़ोटो : **हमें है सिलगने की आस!!**

प्रेषक : **श्री सत्यनारायण लक्ष्मण गुप्ता,**
चेतनदास गार्डन, अमरावती (म.प्र.)

चित्र-कथा

एक दिन दास और वास बाग में खेल रहे थे कि एक शरारती लड़के ने पेड़ के नीचे रखे उनके थैले और पुस्तकों को भुस के ढ़ेर में छुपा दिया। गड़रिये लड़के ने उससे कहा कि भुस के ढेर में से वह थैला ले जाये। फिर वह दास और वास के पास खेलने आया। इस बीच "टाइगर" ढेर में पुस्तकों और थैले के पीछे छुप गया। गड़रिये ने थैला पकड़ा ही थी कि उसने उसका हाथ जोर से पकड़ा। वह डरकर भागा। और डंडा लेकर शरारती का पीछा करने लगा!

Printed by B. NAGI REDDI at the B. N. K. Press Private Ltd., and Published by B. VENUGOPAL REDDI for Sarada Binding Works, 2 & 3, Arcot Road, Madras-26. Controlling Editor: 'CHAKRAPANI'

'भोली सी सूरत, पल पल शरारत-
अभी कपड़े बदले-
-अभी फिर मैले !'

'लेकिन जिस के घर में ऐसी लाडो-पाली हो, उसे सभी गुर सीखने पड़ते हैं!
'इसी लिए मैं अब सनलाइट से धुलाई करती हूं। कपड़े ऐसे सफ़ेद और उजले धुलते हैं कि जी खुश हो जाता है। और सनलाइट के ढेरों झाग में मैल उतरते देर नहीं लगती। मेरी मानिये मैंने क्या कुछ नहीं आज़माया, मगर सनलाइट से अच्छा साबुन मैंने आजतक नहीं पाया!'

नं. २ मेफ़ेअर, बांद्रा, बम्बई में रहनेवाली श्रीमती आत्माराम शुक्ल, मुलायम झागवाले सन-लाइट से कपड़ों की धुलाई करती हैं। अपने कपड़ों की भलाई के लिए आप भी सनलाइट से धुलाई कीजिये।

सनलाइट

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

आप के कपड़ों की सर्वोत्तम सुरक्षा के लिए

S. 29-X29 HI